

श्री
रा
जा

हिन्दी

जे. एंड के. अकैडमी ऑफ आर्ट,
कल्चर एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू

द्विमासिक

शरीरा

हिन्दी

वर्ष : ३१-

अंक : 1

अप्रैल-मई 1996

पूर्णांक 132

प्रमुख सम्पादक

सम्पादक

बलवंत ठाकुर

डॉ० उषा व्यास

संपक : सम्पादक, शीराजा हिन्दी, जे० एंड के० अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर

एंड लैंग्वेजिज जम्मू ।

फोन : 579576 : 577643

मूल्य : 2 रुपये

वार्षिक : 10 रुपये

प्रिण्टेड

॥ श्री ॥

कलसीतरी

३२३१ ई.स. १९५८

१ : १८

— १८ : १८

३२३१ ई.स. १९५८

कलसीतरी

कलसीतरी

३२३१ ई.स. १९५८

कलसीतरी

प्रकाशक : बलवंत ठाकुर, सेक्रेटरी, अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर

एंड लैंग्वेजिज जम्मू 180001

मुद्रक : मैसर्स रोहिणी प्रिंटर्स, कोटकेशन चन्द जालन्धर—144004

इस अंक में—

□ आलेख		
निराला की कविता 'मैं' और 'तुम' का शैली	डॉ० मृदुला कोहली	1
वैज्ञानिक विवेचन		
कश्मीरी कृष्ण-काव्य	डॉ० ओंकार कौल	10
बंगला हिन्दी उपन्यासों में नारी संवेदन	डॉ० मृत्युंजय उपाध्याय	17
□ एक नज़र अपनी		
वैज्ञानिक दृष्टि, समन्वय और सामंजस्य	डॉ० वीरेन्द्र सक्सेना	21
का प्रतिफलन		
□ स्मरण		
भारतीय संस्कृति के समन्वय-सूर्य संत नामदेव	डॉ० सुषमा सरल	27
□ इतिहास नदियों का		
और बहता रहा चिन्ता...	सागर पंडित	38
□ लोक संस्कृति		
कश्मीरी अल्पना 'व्यूग'	प्रो० पृथ्वीनाथ मधुप	43
□ चिन्तन		
उज्जयिनी भावधारा	प्रद्युमन दास वैष्णव	47
□ बहिरंग		
आधी दुनिया का एक सच आशा रानी व्होरा	विष्णु प्रभाकर	51
□ रम्य रचना		
पंजाबी साहित्य में 'मीठे बोल' वचन-अनमोल	प्रो० आशा गुप्ता	57
□ व्यंग्य		
पर्दा है पर्दा...	अनिला सिंह चाड़क	61
□ कविताएं		
न जाने/हे राम !	अशोक कुमार	64
विकट है वर्तमान	कुमार पुष्कर	
धार पर	ईश्वर चन्द्र मिश्र	66
सूरज से घड़ियों तक	डॉ० आदर्श	66
गजल	मनोज शर्मा	67
ललछद के नाम	ब्रजेन्द्र त्रिपाठी	69
राधा रमण कृष्ण	अग्नि शेखर	70
	पीताम्बर शास्त्री	72
□ विदेशी साहित्य		
काइरेनिया	अनु० सुधीर सक्सेना	73
□ कहानियां		
असली नाम के पापा	महाराज कृष्ण सन्तोषी	77

सम्पादकीय —

उत्कृष्ट साहित्य अनेकशः पढ़े जाने पर भी अक्षुण्ण और गतिशील बना रहता है । क्योंकि वह अपने युग का मात्र अंकन नहीं व्यंजन भी होता है । वह हर आगत युग में अपने पाठकों के भीतर नित नूतन अर्थों में उद्घाटित होता है । और हर नया अर्थ, नये प्रसंग-संदर्भ को छूता हुआ समकालीनता के बोध से जुड़ता चला जाता है ।

रचनाकार अपने युग के भीतर युगेतर होता है, कालजयी । अपने अन्तर की रस-धार को प्रवहमान किये रहने वाला वह जायसी हो या सूर, दोनों ही प्रेम और वात्सल्य के उस शाश्वत भाव के गायक हैं जो वर्तमान खंडित सांस्कृतिक धारा में कहीं गहरे विद्यमान हैं ; एक रस हैं ।

यही भाव रंगारंग संस्कृतियों, धर्मों और सम्प्रदायों को परस्पर समन्वित करते हैं । यही भाव मानवता के साथ सदा जीवित भी रहते हैं और प्रासंगिक भी । स्वामी विवेकानन्द पूर्व के दर्शन और पश्चिम के जीवन सौष्ठव की कामना करते रहे । इसीलिये भारतीय चिन्तन तपोवनों, आश्रमों तक ही सीमित रह कर महानगरीय जीवन के प्रश्नों का निराकरण बनता आया । साहित्य, समाज और संस्कृति गतिहीनता, अवरोध की स्थिति में इतिहास की अन्धी कालकारा में बंधे रह जाते हैं । कहना न होगा, कि सप्राणता और सातत्य ही साहित्य की जीवंतता का आधार है ।

पाठकों की रुचियों को ध्यान में रखते हुए हम शीराजा में साहित्य की अधिकतर विधाओं का समावेश करने में प्रयत्नशील रहते हैं । यह अंक भी आपके लिये रुचिकर होगा यही आशा और कामना करते हुए...

—उषा व्यास

आलेख

निराला की कविता 'मैं' और 'तुम' का शैली वैज्ञानिक विवेचन

□ डॉ० मृदुला कोहली

साहित्य के धरातल पर प्रयुक्त होने वाली भाषा पाठक के समक्ष कुछ ऐसे सूक्ष्म अवयवों को उभारती है जो साधारण बोलचाल की भाषा में अनुपस्थित होते हैं। इन्हीं तत्वों के कारण साहित्यिक भाषा में अभिप्रेरण-शीलता (Motivation) भावात्मकता (Adequateness), कल्पनात्मकता (Dictiveness), अतुलनीयता (Non-equivalence), अग्रप्रस्तुति (Foregrounding) और असाधारणत्व (Deviation) के गुण आते हैं। मुकारो-वस्की (1932 : 145) के अनुसार अग्रप्रस्तुति सामान्यपन की विकृति अवश्य है किन्तु यही विकृति काव्य का अतिरस है। इसी के कारण साहित्य में असामान्यपन और आकस्मिक-आनन्द के लक्षण विद्यमान रहते हैं।

रोमनजैकबसन (1960) की अवधारणा है कि भाषा के विभिन्न प्रकार्यों में से काव्यगत प्रकार्य (Poetic function) में ही कथ्य या कथन का संदेश निहित है। किसी भी कृति में भाषा के इसी प्रकार्य का प्राधान्य होता है।

कृति के अर्थ एवं उसकी गूँज को भाषा ध्वनित करती है। रचना की सुबोधगम्यता के लिए किसी बाहरी वातावरण की आवश्यकता नहीं होती अपितु भाषिक अवयव ही एक ऐसे संसार की रचना करते हैं जिनसे सम्प्रेषणीयता संचालित होती है। यह भाषिक इकाइयाँ जो कृति के कथ्य को द्योतित करने में समर्थवान हैं कृति के लिए एक शैली का निर्माण भी करती हैं। यह शैली रचना को काव्यमय या साहित्यिक बनाती है और आम भाषा से अलग पहचान देती है।

गर्गेश (1988 : 52-62) ने समिथ (1978 : 36) के साहित्यिक भाषा/आम भाषा वर्गीकरण से सहमत होकर प्रकृत प्रोक्ति (Natural discourse) और कल्पनात्मक प्रोक्ति (Dictive discourse) में अन्तर स्पष्ट किया है। उनके कथनानुसार प्रकृत भाषा वही है जिसका प्रयोग दृश्य जगत में होता है। कल्पनात्मक भाषा एक नए संसार की रचना करती है जो सूक्ष्म और अदृश्य है। इस नव्यकृत संसार को अपने अनुकूल वातावरण प्रदान करने

के लिए यह आवश्यक है कि भाषिक इकाइयों को पहले सामान्यपन से असन्दर्भकृत (Decontextualized) किया जाए। इस प्रकार भाषिक अवयवों का विशिष्टीकरण हो जाता है जिसके कारण कल्पनापूर्ण होते हुए भी कृति का कथ्य ग्राह्य और आत्मानुभूत हो जाता है।

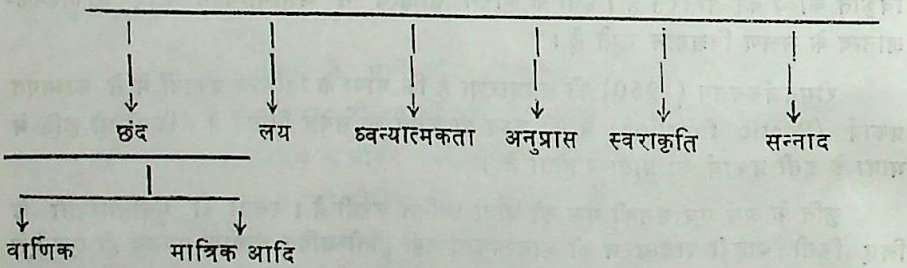
भाषा विज्ञान के प्रणेता डॉ० श्रीवास्तव (1980) के अनुसार किसी भी कृति का शैली वैज्ञानिक विवेचन तीन स्तरों पर आधारित है। ये तीन स्तर हैं : (1) वाक्य प्रतीक का स्तर (Sentence Symbol), (2) कला प्रतीक के घटक (Symbols in Art) और कला प्रतीक (Art Symbol) कला प्रतीक में ही सौन्दर्यानुभूति (Aesthetic) निहित है। पहले स्तर पर कृति का अर्थ अभिधेयात्मक (Denotative), दूसरे स्तर पर लक्ष्यार्थ (Connotative) और तीसरे स्तर पर अभिव्यंजक (Expressive) होता है। तीसरे स्तर पर ही शैलीगत विशेषताएँ उभरना प्रारंभ करती हैं और काव्य के सौन्दर्य को चित्रित करती हैं।

प्रस्तुत कविता का विश्लेषण प्रस्तुत करने के लिए श्रीवास्तव द्वारा उल्लिखित तीन स्तरों का आधार ग्रहण किया जाएगा। इनका क्रम से वितरण इस प्रकार है :—

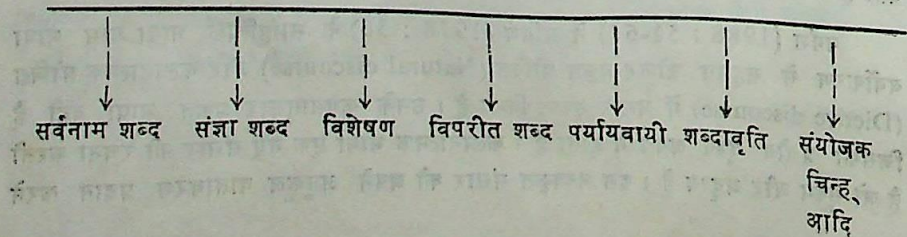
1. वाक्य स्तर का आधार :

इस स्तर पर कृति के निर्माण के लिए स्वनिक्, शब्दगत वाक्यगत एवं अर्थगत भाषिक इकाइयों का महत्वपूर्ण योगदान है। इन में मुख्य अवयव रेखांकित है :—

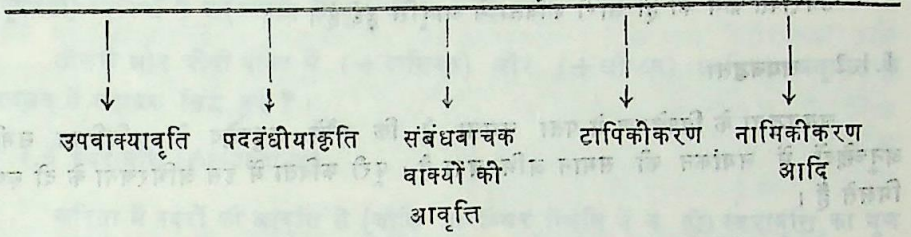
1.1 स्वनिक् स्तर



1.2 शब्दस्तर



1.3. वाक्यगत स्तर



उपरोक्त रेखांकित इकाइयों का विस्तृत वर्णन इस प्रकार है :—

1.1.1 स्वनिक् स्तर

इस स्तर पर छंदों का महत्वपूर्ण विश्लेषण होता है। निराला की प्रस्तुत कविता 'मैं' और 'तुम' में मात्रिक एवं वार्णिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग हुआ है। कविता में मात्रिक छंद के तीन नमूने मिलते हैं। उदाहरण देखिए :—

1. तुम तुंग हिमालय शृंग=13
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता=17
तुम विमल हृदय उच्छवास=13
और मैं कान्त-कामिनी-कविता=17
2. तुम दिनकर के खर-किरन-जाल=16
मैं सर-सिज की मुस्कान=13
तुम वर्षों के बीते वियोग=16
मैं हूँ पिछली-पहचान=13
3. तुम प्रेममयी के कण्ठहार=16
मैं वेणी काल-नागिनी=14
तुम कर-पल्लव-संक्रुत-सितार=16
मैं व्याकुल-विरह-रागिनी=14

उपरोक्त तीनों अनुच्छेदों में मात्राओं की गणना की यद्यपि विभिन्नता है तथापि एक क्रमगत साम्य है। यही क्रम पूर्ण कविता में मिलता है।

इसी प्रकार वार्णिक छंदों में भी काव्यगत लयबद्धता और एक विशिष्ट क्रमसाम्य विद्यमान है।

दो नमूने देखिए :—

- (क) तुम तुंग हिमालय शृंग=10
और मैं चंचलगति सुरसरिता=13

(ख) तुम विमले हृदय उच्छ्वास = 12

और मैं कान्त-कामिनी-कविता = 11

उपरोक्त क्रम की ही सारी कविता में आवृत्ति हुई है।

1.1.2 लयबद्धता

लयबद्धता के विश्लेषण से पता चलता है कि चौथे अनुच्छेद के अतिरिक्त सभी अनुच्छेदों में लयांकन की समान अभिरचना है। पूरी कविता में इस अभिरचना के दो रूप मिलते हैं।

उदाहरण देखिये :—

(1)

(2)

-----शृंग==a	-----कण्ठहार==a
-----सरिता=b	-----नागिनी=b
-----उच्छ्वास=c	-----सितार=a
-----कविता=b	-----रागिनी=b
-----शांति=d	-----रेणु=c
-----अंधकार=c	-----मनमोहन=d
-----भांति=d	-----वेणु=c
-----	-----

इस विभिन्नरूपता के फलस्वरूप कविता का स्तर और भाषा वैज्ञानिक सन्तुलन सराहनीय है।

एक अन्य विशेषता यह है कि “तुमवाचक” पंक्तियों का अंत पुरुषवाचक शब्दों में होता है और ‘मैं वाचक’ पंक्तियों अंत स्त्रीवाचक शब्द लयबद्धता का निर्माण करते हैं।

1.1.3 अनुप्रासत्व :

प्रत्येक पंक्ति के प्रारंभ में एक समान व्यंजनों का प्रयोग कविता में अनुप्रासत्व के गुण को चित्रित करता है।

उदाहरण देखिए :—

तुम तुंग हिमालय शृंग

मैं कान्त—कामिनी—कविता

तुम मृदु मानस के भाव

मैं मनमोहिनी माया

पहली पंक्ति में 'त' की आवृत्ति से (+ जिह्वा फलकीय) और (+ पूर्ववर्ती) ध्वनियों से अनुप्रासत्व का प्रणयन हुआ है। दूसरी पंक्ति में 'क' की आवृत्ति से — जिह्वाफलकीय और (पूर्ववर्ती) ध्वनियों ने अनुप्रासत्व के गुण को जन्म दिया है।

तीसरी और चौथी पंक्ति में (+ नासिक्य) और (+ ओष्ठ्य) ध्वनियाँ अनुप्रास के प्रणयन में सहायक सिद्ध हुई हैं।

1.1.4 स्वरावृत्ति (Assonance)

कविता में स्वरों की आवृत्ति से (जोकि प्रारम्भिक स्थिति में न हों) स्वरावृत्ति का गुण काव्य को अतिरंजित करता है। इस कविता में मुख्य रूप से दो स्वर 'आ' और 'उ' की आवृत्ति हुई है।

उदाहरण देखिए :—

तुम सुरा पान धन अंधकार

× × ×

तुम कुन्द इन्दु अरविन्द शुभ

'आ' की आवृत्ति से (+अग्र), (+निम्न) और (+अवतुलित) ध्वनियों का पुनरांकन हुआ है जबकि 'उ' की आवृत्ति से (+पश्च), (+उच्च) और (+वतुलित) ध्वनियों की आवृत्ति हुई है।

1.1.5 सन्नाद (Consonance)

किसी कृति में व्यंजनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रयोग है। प्रस्तुत कविता में मुख्यतयः नासिक्य और तरल ध्वनियों की आवृत्ति हुई है। उदाहरण देखिए—

तुम रण ताण्डव उन्माद नृत्य

× × ×

दिनकर के स्वर—किरण जाल

इन ध्वनियों से लय बद्धता और संगीतात्मक वातावरण की सृष्टि हुई है।

1.2 शब्द स्तर :

शब्द स्तर की दृष्टि से इस कविता में मुख्य स्वर सर्वनामों का है : 'मैं' और 'तुम' दो सर्वनामों ने इस कृति का संसार रचा है। यही दोनों सर्वनाम इस कृति के शीर्षक भी हैं। एक अन्य विशेषता यह है कि इन दोनों सर्वनामों का प्रयोग पंक्तियों के प्रारम्भिक शब्दों में हुआ है और यह दोनों सर्वनाम एकवचन में—यानि एक वक्ता और एक श्रोता के द्योतक।

“मैं” स्त्रीवाचक है और “तुम” पुरुषवाचक है।

1.2.2 संज्ञा शब्द :

इस कविता में प्रयुक्त संज्ञा शब्दों को मुख्यतः दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। ये हैं—मानवाचक संज्ञा शब्द और पदार्थ वाचक—जिसे अंग्रेजी में क्रमशः “सबस्टैंटिव” और “कनवारीट” शब्द कहेंगे। भाववाचक शब्द पुनः दो भागों में विभक्त किये जा सकते हैं—(1) प्रिय के व्यक्तित्व के द्योतक जैसे प्रेम, वियोग, उच्छ्वास, तप आदि। (2) प्रियतमा यानि “मैं” के व्यक्तित्व के द्योतक जैसे शांति, भ्रांति, आशा अभिलाषा आदि। प्रथम कोटि के शब्द पुरुष वाचक हैं। दूसरी कोटि के शब्द स्त्रीवाचक हैं। भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से दोनों प्रकार के शब्द (—श्रव्य) और (—दृश्य) हैं।

इस कविता में वर्णित भाववाचक संज्ञा-शब्दों की एक अन्य कोटि है—रचना अभिक्रिया से सम्बन्धित शब्द। ये सभी स्त्रीवाचक हैं और प्रियतमा के अस्तित्व के निर्माता भी। ये हैं—कविता, रागिनी, और तान आदि। ये सभी (—श्रव्य) हैं, किन्तु (—दृश्य) हैं।

प्रस्तुत कविता में वर्णित पदार्थ वाचक शब्दों की तीन कोटियाँ हैं। (1) प्रकृति संबंधी, (2) परम्परागत मिथ सम्बन्धी, (3) आभूषण अलंकार से सम्बन्धित। प्रथम कोटि के शब्द स्त्री वाचक भी हैं और पुरुष वाचक भी। जैसे—हिमालय, विटप, निशीथ, शाखा सुरसरिता तथा किरण जाल आदि। इनका प्रयोग काव्य-जगत के सृजन के लिए हुआ है। मूर्त्त और अमूर्त्त संज्ञा-शब्दों के कारण दृश्य और अदृश्य चित्र उभरे हैं। आभूषण एवं अलंकार संबंधी शब्द हैं—तुपुर, झंकार, कण्ठहार तथा वेणी आदि। “मिथ” से जुड़े शब्द हैं शिव, राम तथा सीता आदि।

1.2.3 विशेषण :

संज्ञा शब्दों को विभूषित करने वाले विशेषणों ने इस कृति के सौन्दर्य को द्विगुणित किया है। निराला जी की इस कविता में मुख्य रूप से गुणवाचक और परिमाण वाचक विशेषणों का प्रयोग हुआ है। रेखांकित शब्दजैसे—स्वेच्छाचारी, मतवाली (भ्रांति), सुखशीतल तल (शाखा), कान्त कामिनी (कविता), विमल हृदय (उच्छ्वास) आदि गुणवाचक शब्द पात्रों की वृत्तियों को निखारते हैं तो घनपटल, तुंग सुरावान आदि शब्द पात्रों के व्यक्तित्व की विशेषता को नापते हैं। भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से इनमें (—दृश्य) (—स्पृश्य) आदि विशेषताएं विद्यमान हैं।

1.2.4 पर्यायवाची शब्द

निराला की इस कविता में पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से विभिन्न त्रि-संदर्भ चित्रित हुए हैं कुछ पर्यायवाची शब्दों के उदाहरण देखिए—

निर्मल=शुद्ध, विमल।

नाद=तान, रागिनी।

तप=अम्बर।

रचना=कविता।

मृदु=कोमल।

इनसे काव्य-जगत में अलग-अलग रंग चित्रित हुए हैं।

1.2.5. संयोजक शब्द और योजक चिन्ह

ये सभी शब्द इस कृति का मेरुदण्ड हैं।

1.3 वाक्यगत स्तर

इस स्तर पर क्रिया का संचालन (Movement of verb) नामिकीकरण (Nominalization), टापिकीकरण (Topicalization), पदबंध आवृत्ति (Phrasal repetition) और संबंधवाचक वाक्यों की आवृत्ति (Repetition of genitive structure) आदि का प्रयोग इस कविता में हुआ है। क्रिया के संचालन का उदाहरण देखिए—

मैं हूँ पिछली पहचान

तुम हो रागानुग निश्चल तप।

बिना क्रिया के संचालन के इस वाक्य का रूप ऐसा होता : मैं पिछली पहचान हूँ, तुम रागानुग तप हो) क्रिया का ऐसा प्रयोग सम्पूर्ण कविता का पैटर्न है और इसके पुनरांकन से माया में विचलन (Deviation) का गुण आया है।

नामिकीकरण के प्रयोग से सम्पूर्ण वाक्य को संज्ञा रूप में ही प्रस्तुत किया गया है और क्रिया शब्दों का पूर्ण लोप कर दिया गया है। उदाहरण देखिए—

तुम मृदु-मानस के भाव

और मैं मनोरंजनी भाषा।

इस संज्ञा पदों की आवृत्ति कविता में काव्य जगत को विशेष भाषा वैज्ञानिक सौन्दर्य आया है।

पदबंध आवृत्ति में मुख्यतः संबंधसूचक वाक्य ही चित्रित हुए हैं। संबंधसूचक प्रत्यय के प्रयोग से वाक्य रचना के अनूठे उदाहरण प्रस्तुत किये गए हैं। एक उदाहरण देखिए—

तुम दिनकर के खर-किरण-जाल।

मैं सरसिज की मुस्कान।

तुम वर्षों के बीते वियोग। आदि ऐसे उदाहरण सम्पूर्ण कविता में छितरे हुए हैं।

1.4 अर्थगत स्तर

अर्थगत स्तर पर रूपकों का प्रयोग इस कविता का मुख्य आकर्षण है। सम्पूर्ण कृति का संसार ही रूपकों पर आधारित है। “मैं” और “तुम” को काव्यगत रंग देने के लिए ही इन रूपकों का प्रयोग हुआ है। सम्पूर्ण कविता में 25 रूपक हैं यानि प्रत्येक पंक्ति रूपक बद्ध है। ये रूपक दो कोटियों में विभक्त हैं। पहली कोटि “मैं” की है और दूसरी “तुम” की है।

उदाहरण देखिए—

(1) तुम के लिए प्रयुक्त रूपक :

	[	तुंग हिमालय-शृंग
		विमल हृदय उच्छवास
		सुरापान धन अंधकार
		दिनकर के खर —
तुम—	→	] किरण-जाल
		वर्षों के बीते वियोग
		रागानुग निश्चल तप
		मुदुमानस के भाव
		सच्चिदानंद ब्रह्म

(2) मैं के लिए प्रयुक्त रूपक ।

	[	चंचलगति सुरसरिता
		कांत-कामिनी-कविता
		मतवाली आंति
मैं—	→	] सरसिज की मुस्कान
		पिछली पहचान
		सुचिता सरल समृद्धि
		मनोरंजिनी भाषा

2.0 कला प्रतीक के घटक का आधार (Analysis at the level of symbol of arts)

इस स्तर पर भाषिक इकाइयों का विश्लेषण काव्य गुण को जन्म देता है। कविता में वर्णित विभिन्न भाषिक इकाइयों के माध्यम से जो काव्य-संसार रचा गया है, उसका विवरण इस प्रकार है—

स्वर्णिक स्तर पर छंदों की गणना में जो क्रम—साम्य है उसके कारण कृति में एक-रूपता और क्रमात्मकता आई है। वार्णिक-छंदों में प्रयुक्त क्रम-साम्य से जहां एक ओर पद्यात्मक लयबद्धता का निर्माण हुआ है वहीं दूसरी ओर गद्यात्मक लयबद्धता का भी सृजन हुआ है।

अनुप्रासत्व के प्रयोग से वाक्य में आन्तरिक लय का सृजन हुआ है और काव्य-जगत में एक प्रकार के संसक्तिपूर्ण सम्बन्ध (Choisive relationship) उभरे हैं।

नासिक्य ध्वनियों की आवृत्ति से संगीतात्मकता और तरल ध्वनियों की आवृत्ति से कविता में सुकोमलता उपजी है।

शब्द-स्तर पर देखें तो संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा पर्यायवाची शब्दों के प्रयोग से कविता में विभिन्न रंग उभरे हैं। सर्वनामों ने “मैं” और “तुम” के माध्यम से काव्यगत में दो ऐसे प्राणियों का निर्माण किया है कि जो सामान्य जगत के परे के पात्र होते हुए भी सत्य भासित होते हैं। कविता में “मैं”, प्रिय के सत्व का द्योतक है और “तुम” प्रियतमा

के सत्व का। “मैं” और “तुम” के प्रयोग से दो पात्रों की निकटता और अभिन्नता का चित्रण हुआ है। पाठक उनके साथ अपनी अनुभूति का तादात्म्य कर लेता और उनकी पीड़ा को “स्व” से जोड़ लेता है।

विभिन्न संज्ञा शब्दों के प्रयोग से काव्य जगत के “मैं” और “तुम” की अन्तःप्रकृति का निर्माण हुआ है। उन दोनों के अस्तित्व की कोमलता, मधुरता, आलंकारिकता, चंचलता, विशालता और ठोसपने के गुण भाववाचक संज्ञा शब्दों के प्रयोग द्वारा चित्रित हुए हैं। पुरुषवाचक संज्ञा शब्द काव्य-जगत के “प्रिय” के अस्तित्व के तथा स्त्री-वाचक संज्ञा-शब्द “प्रियतमा” के अस्तित्व के निर्माता हैं। मूर्त और अमूर्त के प्रयोग से दो अस्तित्वों के चित्रण में समीकरण और विरोध उभरा है।

वाक्य-संरचना का विश्लेषण दर्शाता है कि विभिन्न प्रयोगों से कविता में कल्पना के विभिन्न रंग उभरे हैं। (1) क्रियासंचालन के प्रयोग से कविता में भाषा-विचलन का गुण आया है। (2) नाभिकीकरण की संरचना से भाषा में शैली-वैज्ञानिक आयाम उभरे हैं। (3) पदबंध की आवृत्ति से वाक्य रचना में समान्तरता (Parallelism) और एकरूपता (Uniformity) आई है।

कविता का अर्थगत विश्लेषण “मैं” और “तुम” के विभिन्न बिम्ब उजागर करता है। रूपकों के प्रयोग से जहाँ प्रियतम के व्यक्तित्व में सटीकता, विशालता, प्राणवत्ता, मादकता, जीवन्तता तथा आनन्दमूलता के गुण उभरे हैं वहीं प्रिया के अस्तित्व में चंचलता, रचनात्मकता, भावात्मकता, प्रसन्नता, प्रेम, शांति, सरलता, धीरता तथा आनन्द प्रेषिका के काव्य गुणों का सृजन हुआ है।

3. कला प्रतीक का स्तर (Art Symbol/Aestheticsuuiopol)

काव्य-विश्लेषण का तीसरा स्तर है—कला प्रतीक का स्तर। इस स्तर पर भाषिक अवयव अपने सम्पूर्ण अर्थ के साथ कविता में एक नए रंग को उभारते हैं। उदाहरणतयः स्वनिक वातावरण कविता की संगीतात्मकता में झंकार पैदा करता है तो शाब्दिक वातावरण काव्य-जगत के अदृश्य, अस्थानीय, कालीय और अस्पृश्य पात्रों का निर्माण करता है चेतन प्रिय में जड़ हिमालय जैसी ठोसपन, विशालता और दृढ़ता भी विद्यमान है और अदृश्य ब्रह्म जैसी आध्यात्मिकता और ईश्वरता भी। काव्य का “तुम” यानि प्रिय “मृदुमानस का भाव” है। अमूर्त होते हुए भी चेतन शरीर में विद्यमान है। विमल हृदय के उच्छ्वास की शुद्धात्मा है और उसका सत्य प्रकृति के नियमों से परिचालित है। “मैं” और “तुम” के अभिन्नत्व में वेदांत के एकोऽहम का भाव भी निहित है। कविता में “मैं” और “तुम” ऐसे पात्र हैं और अलग-अलग गुणों से युक्त होते हुए भी संसक्त हैं। यही संसक्ति इस कृति की गूँज है। इन पात्रों के साथ पाठक अपनी रागानुभूतियों को जोड़ता है और साहित्य के आनन्द का रसास्वादन करता है। कविता के तुंग-हिमालय-शृंग से लेकर चंचल-गति-मुर-सरिता के बहाव में बहता हुआ कवि पाठक को कांत-कामिनी-कविता रसास्वादन कराता हुआ कुन्द-इन्दु-अरविन्द कराला शुभ्र की निर्मलव्याप्ति में लीन कर देता है। शैली का यह गुण कविता की नुपुरध्वनि को ध्वनित करता हुआ निराला को कवि-शृंगार शिरोमणि के पद पर आसीन कर देता है। □

कश्मीरी कृष्ण-काव्य

□ डॉ. ओंकार कौल

कश्मीर में कृष्ण-काव्य का प्रारम्भ 11वीं शती में क्षेमेन्द्र की संस्कृत रचना "दशावतार चरित" से माना जा सकता है। परन्तु कश्मीरी भाषा में 17वीं शती के प्रारम्भ तक कृष्ण से सम्बन्धित काव्य रचना उपलब्ध नहीं होती। इसका मुख्य कारण यह है कि कश्मीर मुख्यतः शैवमत का प्रमुख केन्द्र रहा है। कश्मीरी काव्य प्रारम्भ से ही शैवमत से प्रभावित रहा है। कश्मीरी की आदि कवयित्री लल्लेश्वरी (14वीं शती) की वाणी में शैवमत का प्रभाव देखने को मिलता है जो प्रारम्भिक काल में ही एक-अन्य प्रमुख सूफी कवि नुन्द ऋषि की काव्य-रचनाओं में भी दिखाई देता है। सूफियों और सन्तों की वाणी मुख्यतः परमात्मा के निर्गुण रूप के ब्रह्म और धार्मिक एवं नैतिक मूल्यों की स्थापना तक ही सीमित रही।

अन्य समीपवर्ती भाषाओं की भांति कश्मीरी में सगुणात्मक भक्ति काव्य की रचना 16वीं शती से ही प्रारम्भ हुई। कश्मीरी में राम तथा कृष्ण-काव्य की रचना विभिन्न रूपों में हुई। राम और कृष्ण को विष्णु के अवतार के रूप में स्वीकारा तो गया, पर शिव की प्रतिष्ठा बराबर बनी रही। कई स्थलों पर विष्णु के अवतार राम और कृष्ण शिव की बड़ाई स्वीकार करते हैं, उन्हें पूजते हैं और तमाम कठिनाइयों में उनकी शरण में चले जाते हैं। इस तरह अवतारवाद को प्रतिष्ठा तो मिली पर ये अवतार रूप भी मानवीय संवेदनाओं और आशा-आकांक्षाओं से मुक्त नहीं हुए।

कश्मीरी में कृष्ण-काव्य के विभिन्न रूप मिलते हैं। परम्परागत कृष्ण कथा-प्रसंगों, कृष्ण के अवतार रूप, कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं, और कृष्ण के गीता-उपदेश का वर्णन विभिन्न रूपों में हुआ है, कथा प्रसंगों का मुख्याधार संस्कृत भागवत, दशावतार चरित, उपनिषद् और पौराणिक संदर्भ रहे हैं।

कश्मीरी में कृष्ण-काव्य की रचनाओं का प्रारम्भ कश्मीरी साहित्य के गीत-काल के अन्तर्गत हुआ। साहिब कौल इस काल के एक प्रमुख कवि थे। 16वीं शती के उत्तरार्द्ध में जन्मे इस कवि ने कई रचनाएं लिखीं इनमें "कल्प-वृक्ष", "जन्म चरित" तथा "श्रीकृष्ण

अवतार लीला” प्रमुख हैं। “श्री कृष्ण-अवतार लीला” मुख्यतः भागवत के दशम स्कन्ध पर आधारित है। ग्रियर्सन ने इस कृति का सम्पादन किया है और इसे रॉयल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल ने 1926 ई० में प्रकाशित किया है। इस कृति की पाण्डुलिपि रिसर्च लाइब्रेरी श्रीनगर में सुरक्षित है। इसमें कुछ पाठान्तर भी मिलते हैं। कथा-वस्तु के गठन तथा चरित्र-निर्माण में आधार्मिक स्रोत से इसमें अधिक भिन्नता नहीं है। हाँ, भाषा-शैली की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण कृति है। साहिब कौल ने इसमें प्रगीतात्मक शैली का प्रयोग किया है। इसका छन्द विधान चार पंक्तियों पर आधारित है। जिसमें चौथी पंक्ति प्रगीतात्मक शैली के अनुरूप टेक की पंक्ति है। यह प्रगीतात्मक शैली इस काल में पनपी और फिर बाद में लीला-शैली में परिवर्तित हुई। भाषा संस्कृतनिष्ठ कश्मीरी है जिसमें फारसी के कुछ शब्दों का प्रयोग भी हुआ है।

कृष्ण काव्य सम्बन्धी फुटकल रचनाएं अधिकतर लीलाओं या भक्ति गीतों के रूप में और कवियों ने भी लिखीं; पर साहिब कौल के पश्चात् कृष्ण-भक्त कवियों में परमानन्द (1791-1885) का नाम प्रमुख है।

परमानन्द “लीला काव्य” शैली के एक उच्च स्तरीय कवि माने जाते हैं। इनकी इसी शैली में रचित नैतिक मूल्यों, उपदेशों तथा स्तुतिपरक कई रचनाएं प्रसिद्ध हैं, इन भक्तिपरक गीतों के अतिरिक्त इन्होंने तीन प्रबन्ध काव्य-कृतियाँ—“राधा-स्वयंवर”, “सुदामा चरित” और “शिव लग्न” की रचना की। इनमें पहली दो रचनाएं कृष्ण तथा काव्य से सम्बन्धित हैं।

परमानन्द ने कृष्ण कथा सम्बन्धित प्रसंगों और घटनाओं का निरा कथानक की रोचकता दर्शाने के लिए बखान नहीं किया, बल्कि अनेक स्थलों पर इनका प्रयोग अन्योक्ति और रूपक के माध्यम से सामान्य से गहरे अर्थ प्रकट करने के लिए किया है। वे विभिन्न घटनात्मक प्रसंगों को सांकेतिकता के द्वारा आध्यात्मिक या दार्शनिक आयामों की अभिव्यक्ति करते हैं। सांकेतिकता प्रायः किसी विशिष्ट शब्द वाक्यांश, वाक्य, अनेकार्थक शब्दों के प्रयोग द्वारा या उपमा अथवा रूपक के प्रयोग के माध्यम से परिलक्षित होती है। सांकेतिकता के विशिष्ट प्रयोगों द्वारा कृष्ण और गोपबालाओं का रति-सम्बन्ध प्रेम भक्ति के रूप को प्रकट करता है, रास-विलास आध्यात्मिक दिव्य आनन्द को परिलक्षित करता है और मुरली ध्वनि अनहद नाद को। इसी भाँति चीर-हरण माया के आवरण को हटाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

“राधा-स्वयंवर” कृति के प्रारम्भ में ही राधा-कृष्ण केलि-क्रीड़ा के प्रसंग में आत्मा और परमात्मा के राग-सम्बन्धों की व्याख्या इस प्रकार हुई है :

—गोकुल मेरा हृदय है प्रभु !

जहाँ विचरती हैं तुम्हारी गायें

मेरे मन की बतियाँ हैं गोपियाँ

तुम्हारे पीछे पगलायी दौड़ती हैं

वांसुरी के नाद से उन्मत्त हुई सी

सुध-बुध विसारे हुए

अपने-पराये का भेद-भाव भूलकर

ओ चित्त-विमर्श दीप्तिमान भगवान !

“राधा-स्वयंवर” कृति भागवत आदि आधार ग्रन्थों से प्रेरित है, पर इसमें कई मौलिक प्रसंग जुड़े हैं और अभिव्यक्ति के धरातल पर इनकी नई अभिव्यंजना हुई है। कृति का प्रारम्भ राधा के जन्म और बाल क्रीड़ाओं के वर्णन से होता है और परिणति कृष्ण-राधा के प्रणय और परिणय में। इस कथानक में कई घटनाओं जैसे कुंज विहार, मुरलीवादन, रास-क्रीड़ा, गोपिका चीर-हरण, रुक्मिणी मान-हरण, अक्रूर के साथ मथुरा-गमन, असुर-वध, कंस वध आदि प्रसंगों का भी समावेश हुआ है। इसमें कृष्ण द्वारा राधा का चीर-हरण जैसे कुछ मौलिक प्रसंग भी हैं। प्रसंगों के वर्णन में सांकेतिकता यत्र-तत्र अभिलक्षित होती है। बालिका राधा की जन्म कुण्डली देखकर नारद अवाक् रह जाते हैं। बालिका राधा के प्रति यशोदा का स्नेह दिखाया गया है। राधा और कृष्ण की बढ़ती प्रीति देखकर वृषभानु का पुरोहित के हाथ विवाह प्रस्ताव भेजना तथा कृष्ण का “मोती के बीज बोकर” मोतियों की फसल को पुरोहित और राधा के परिजनों को उपहार स्वरूप भेजना कुछ नये प्रसंग जोड़े गए हैं। राधा और कृष्ण के विवाह के अवसर पर प्रकृति और पुरुष के मिलन का सुन्दर बिम्ब चित्रित हुआ है—

—लोकपाल वायु पथ बृहत्तर रहा था

स्वयं इन्द्र लिपाई करा रहा था

बिछा रहा था फूल वसन्त

सूर्य-चन्द्रमा दीपावली किए हुए थे

बादलों का छत्र लिए हुए थी विजली

पाखी आकाश के अपने पंखों से पंख झल रहे थे

गानरत थे गन्धर्व

नृत्य-रत थी सुन्दर अप्सराएँ ।...

परमानन्द ने कृष्ण और राधा के प्रेम का अंकन बहुत ही सुन्दर और संयत ढंग से किया है। अन्त में राधा कृष्ण की बांहों में यां लीन होती दिखाई गई है कि कृष्ण ठगे रह जाते हैं। रति-राग के चित्रण के माध्यम से कवि अहं का बहुत ही रोचक दृश्य प्रस्तुत करते हैं। राधा प्रेम की मूर्ति सरल स्नेहमयी है। उनका प्रेम समर्पणाकुल है। राधा के रूप का वर्णन भी सुन्दर और संयत है। सद्यः स्नाता राधा के रूप का चित्रण देखिए :

—राधा का तन गन्धता चन्दन है

उनके काले केश इस चन्दन विटप से

लिपटे भुजंग

पर केशव को उनके डसने का भय नहीं.....

कृष्ण के चरित्र का चित्रण भी कवि ने केवल रति-राग में लिप्त नायक के रूप में न

करके उन्हें धीर-शांत-दिव्य-पुरुष, भगवान के अवतार के रूप में किया है। उनकी सारी गतिविधियों को लीला के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। इस कृति में जहाँ उनके मुरली वादक, लोकरंजक और रास-विलासी रूप का चित्रण हुआ है वहाँ उनके अतिमानवीय, असुर-संहारक और भू-रक्षक अवतारी विम्ब की भी प्रतिष्ठा हुई है।

भाषा-शैली की दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण है। भाषा संस्कृतनिष्ठ कश्मीरी होने पर भी इसमें फारसी-अरबी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। लीला-शैली में रचित इस कृति में संगीतात्मकता बराबर बनी रहती है। लीला-शैली के अनुरूप प्रथम पंक्ति की टेक पर तीसरी पंक्ति के पश्चात् दोहराई जाती है। इस कृति में कुछ गीत बहुत ही प्रसिद्ध हैं जो विवाह के अवसर पर आज भी से गाए जाते हैं।

कृष्ण-कथा से सम्बन्धित परमानन्द की दूसरी काव्य-कृति है “सुदामा चरित”। कश्मीरी साहित्य में इस काव्य-कृति को भी एक ऊँचा स्थान प्राप्त है। जहाँ राधा स्वयंवर रचना का प्रारम्भ चित्त-विमर्ष दीप्तिमान् भगवान के प्रति वन्दना-गान से होता है, वहाँ सुदामा चरित में देवकीनन्दन के जय-गान से, जिनके जन्म से अन्धकार में प्रकाश हो जाता है। इस कृति का कथानक भागवत् आदि के आधार पर कृष्ण और सुदामा की मैत्री का प्रसिद्ध प्रसंग है। परमानन्द इस कथानक को सांकेतिकता के परिवेश में मनुष्य और ईश्वर के पारस्परिक नैकट्य या मैत्री-सम्बन्ध को प्रस्तुत करते हैं। कवि के अनुसार मनुष्य और परमात्मा की आपसी दूरी का कारण जीव का अहं भाव है। इस अहंभाव के न रहने पर जीव परमात्मा से अभिन्न है। बचपन में सुदामा का अपने मित्र कृष्ण से छिपाकर चावल खाने को जीव के अहंबोध के अर्थ में समझा जाता है जिसके कारण उसे यातना सहनी पड़ती है। लेकिन फिर सद्बुद्धि सुशीला की प्रेरणा से, जीव फिर ईश्वर की ओर अपनी यात्रा आरम्भ करता है और उसके सारे दुःख मिट जाते हैं। परमानन्द ने यह कथा-रूपक बड़ी सुन्दरता से प्रस्तुत किया है।

“सुदामा चरित्” का प्रारम्भ कृष्ण के बाल-चरित के वर्णन से होता है। कृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं, ग्वालिनों के मटके फोड़ने और दही मक्खन चुराने का वर्णन सरस है। गोपियाँ यशोदा के पास शिकायत लेकर जाती हैं। शिकायतें सुन-सुनकर तंग आने पर यशोदा कृष्ण को रस्सी से बांधती हैं। सुदामा-कृष्ण मैत्री प्रसंग भी बाल-लीलाओं के प्रसंग में आता है। कवि के शब्दों में सुदामा कृष्ण के मित्र ही नहीं स्वयं उनके बाल भाव थे। सुदामा अहंभाव के शिकार हुए। द्वैत की भावना जागी (सुदामा का छिपा कर चावल खाना)। दोनों अलग हुए और सुदामा को दरिद्रता का जीवन व्यतीत करना पड़ा। फिर पत्नी की प्रेरणा से वे कृष्ण से मिलने द्वारका की ओर चल पड़ते हैं तो सारी स्थिति ही बदल जाती है। सुदामा के द्वारका पहुंचने से पूर्व ही कृष्ण स्नेह-अधीर होकर उससे मिलने के लिए महल से बाहर आते हैं। जीवात्मा और परमात्मा का यह मैत्री भाव पारस्परिक प्रेम है। सुदामा ईश्वर की कृपा के सामने पूरी तरह समर्पित हो जाते हैं और उनके सारे दुःख एकदम मिट जाते हैं। द्वारका जाते हुए सुदामा की स्थिति का वर्णन इस तरह हुआ है :

—अविरल अश्रुधार बहाते हुए

वह मानो समुद्र की थाह लेने को निकल चला

जिसका कोई नाम नहीं, रूप नहीं

कोई दिशा नहीं

उसका संतरण छोटी-सी नाव से करने को

एक महाभाव उस नाव का मांझी बना

और उसे किनारा दिखा गया ।.....

परमानन्द की शैली की एक विशिष्टता यह है कि उनकी रूपक-रचना या अन्योक्ति कभी भी कथा का प्रवाह रोचक नहीं पाती है। कथा का प्रवाह सरस ढंग से निर्बाध आगे चलता रहता है। हां, रूपक रचना से कथानक का वर्णन अधिक सार्थक हो जाता है।

“राधा स्वयंवर” की भांति “सुदामा चरित” की भाषा शैली भी सुगठित और सरस है। इसमें भी “लीला-शैली” ही अपनाई गई है। इस कृति के कुछ गीत भी प्रसिद्ध हैं। इन दो प्रबन्ध काव्य-कृतियों के अतिरिक्त परमानन्द ने कृष्ण-भक्ति भावना से ओत-प्रोत कई भक्ति गीत लीला शैली में लिखे हैं।

परमानन्द के पश्चात् कृष्ण-काव्य के संदर्भ में परमानन्द के ही एक शिष्य लक्ष्मण कौल “बुलबुल” (मृत्यु 1898) का नाम लिया जाता है। “बुलबुल” ने “सामनामा” तथा “नलदमन” नामक प्रसिद्ध मसनवियों के अतिरिक्त परमानन्द की प्रेरणा से कृष्ण कथा से सम्बन्धित “मोहिनी प्रसंग” की रचना की और अनेक भक्ति परक रचनाएं लिखीं।

“मोहिनी प्रसंग” की कल्पना मौलिक है। इसमें कृष्ण राधा से मिलने के लिए स्त्री वेष में “चूड़ियां बेचने वाली” का रूप धारण करते हैं उन्हें देखकर राधा की मां उन पर मुग्ध होती है और राधा को चूड़ियां पहनाने के लिए कक्ष में भेजती हैं। “चूड़ियां बेचने वाली” राधा को चूड़ियां पहनाते हुए कृष्ण के वारे में कुछ अप्रिय बातें कह देती हैं, जिन्हें राधा सह नहीं पाती, वह “चूड़ियां बेचने वाली” पर गुस्सा हो जाती है तो उसके गुस्से की पराकाष्ठा देखकर कृष्ण अपने वास्तविक रूप में प्रकट होते हैं। वे उन्हें अपनी बांहों में कस लेते हैं जिससे वह कृष्ण में ही लीन हो जाती है। इस कृति में विरह में कृष्ण और राधा की मनोदशा का बहुत ही सुन्दर वर्णन मिलता है। परमानन्द अपने शिष्य लक्ष्मण कौल “बुलबुल” द्वारा लिखित “मोहिनी प्रसंग” से इतना प्रभावित हुए कि उन्होंने इसे अपने “राधा स्वयंवर” में जोड़ दिया।

कश्मीरी में कृष्ण काव्य की परम्परा को आगे चलाने में एक अन्य प्रतिष्ठित कवि कृष्ण राजदान (1848-1927) को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त हुआ है। उन्होंने “शिव लग्न” नामक प्रबन्ध काव्य की रचना करने के अतिरिक्त, राधा-कृष्ण प्रीति प्रसंग और रास-विलास विषयों पर सुन्दर काव्य रचना की। कृष्ण राजदान भक्ति-भावना से प्रेरित होकर शिवजी की उपासना तथा कृष्ण अवतार की ओर आकृष्ट हुए। उन्होंने कृष्ण की बाल क्रीड़ाओं, राधा गोप-बालाओं के साथ रचे रास-विलास का सुन्दर चित्रण किया है।

कुछ कृष्ण भक्ति परक गीतों की रचनाएं उनके “शिव लग्न” में भी सम्मिलित हैं।

प्रसंग यह है कि शिव-विवाह में विष्णु वर के पिता बनकर आते हैं और इस बहाने कवि को विष्णु-अवतार कृष्ण के रास-विलास का वर्णन करने का अवसर मिलता है। स्वतन्त्र रूप से भी कृष्ण राजदान ने कृष्ण-राधा और गोप-बालाओं के रास-विलास का जीवंत चित्रण प्रस्तुत किया है। कृष्ण राजदान द्वारा लिखित कुछ रास-गीत बहुत ही प्रसिद्ध हुए हैं। उन्हीं गीतों में एक है “मन वृन्दावन” जिसमें उन्होंने कृष्ण के प्रति अनन्य भक्ति प्रदर्शित की है :

—मन मेरा वृन्दावन रे

आत्मरूप नारायण रे

गोप बालाओं द्वारा गाए गीत सुन्दर भाव-विम्ब प्रस्तुत करते हैं :

—आधी-आधी रात आंखों में नींद लिए

पगला गयी हम कृष्ण को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते

नाचते-नाचते गाती हैं.....

रास में निमग्न कृष्ण और राधा अंतर्ध्यान हो जाते हैं। गोपबालाएं हताश होकर गली-गली, कुंज-कुंज पगलाई सी उन्हें ढूँढ़ती फिरती हैं :

—कृष्ण को खोजते-खोजते

चला गया उजाला आंखों का...

एक और रास-गीत गीतात्मकता की दृष्टि से बहुत ही सुन्दर है :

—आओ, मिलकर सब हाथ पकड़ लें

चलो, रास खेलने को चलें !

गोपीनाथ साथ नाचने लगे जो

बीते छः मास बनकर एक रात

वर्ष बने एक दिन सा, बने पहर एक मास

कभी सुनती मुरली धुन यहां कभी वहां

हैं यहां-वहां सब कहीं बस कृष्ण और राधा साथ

पकड़े थे हम सब का हाथ... ..

गोप बालाएं कृष्ण के दर्शन के लिए सदैव आतुर दिखाई देती हैं :

—तुम्हारे प्रेम में बहती आंसुओं की धारा

पहुंच गई है तारा-मण्डल तक

लिए हुए चन्द्रमा अमृत का प्याला

जागो श्याम हुआ उजाला रे !...

कवि ने कृष्ण को एक और गीत में साकार वसन्त के रूप में चित्रित किया है।

—पहनकर आए वसन्ती वसन श्याम सुन्दर

हो गया हरा संसार सारा

सखि, वसन्त आया है, वसन्त !

कश्मीरी में कृष्ण काव्य से सम्बन्धित मान जू अत्तार द्वारा रचित दो और काव्य कृतियां मिलती हैं : “कृष्णावतार” तथा “रुक्मिणी मंगल” मानजू अत्तार ने इनकी रचना 20वीं शती के पूर्वार्द्ध में की हैं, दोनों कृतियां अप्रकाशित हैं। इनका आधार भागवत ही है। इन दो कृतियों में भी लीला-शैली को अपनाया गया है। कथानक में कोई विशेष मौलिक प्रसंग नहीं मिलते। कश्मीरी में कृष्ण-काव्य दोनों प्रबन्धात्मक तथा फुटकल स्वतन्त्र लीलाओं या गीतों के रूप में मिलता है। बहुत-सी रचनाएँ अप्रकाशित होने के कारण अनुपलब्ध हैं। □

श्रीराजा के शीघ्र प्रकाश्य

‘नयी कलम विशेषांक’

के लिए जम्मू-कश्मीर राज्य तथा राज्येतर शिक्षा संस्थाओं के नये हस्ताक्षरों की रचनाएँ आमंत्रित हैं, शीघ्र भेजें। —सं.

बंगला हिंदी उपन्यासों में नारी संवेदन

□ डॉ० मृत्युंजय उपाध्याय

बंगला साहित्य के लगभग डेढ़ सौ वर्षों का इतिहास बंकिमचन्द्र से प्रभावित है। उनमें तत्कालीन समाज और परिस्थितियों की निजी समझ थी। उन्होंने अपने साहित्य में सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों का विश्लेषण एवं भाषा का उत्तरोत्तर विकास अनूठे ढंग से किया। उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने हमारे सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और आशा-आकांक्षाओं का मार्मिक चित्रण किया है। वाल्टर स्काट ने अपने साहित्य में जैसे राजाओं और सुखीजनों को विशेष स्थान दिया, उसी तरह बंकिम ने शोषित नारी को उसके वास्तविक स्थान का ज्ञान कराया। पीड़ित, शोषित जनता को संबल प्रदान किया। नारी-यातना और नारी संघर्ष के चित्रण में बंकिम बाबू सिद्धहस्त कथाकार हैं। बंकिम की नारी में अपूर्व दीप्ति है। शौर्य का आगार है। साहस का उद्देक है और है अशेष दृढ़ता। गोपाल हालदार का मानना है :

“बंगला साहित्य में बंकिम एकमात्र रचनाकार थे जो बंगला साहित्य और नारी दोनों के उत्थान के प्रथम स्त्रोत हैं।”¹²

नारी चित्रण का यह सिलसिला बंकिम बाबू से आज तक लगातार चलता रहा। संघर्ष के रूप बदले। युग के मूल्य-परिवर्तन एवं स्थापनाओं में बदलाव के कारण संघर्ष के आयाम बदले। तेवर बदला। परन्तु नारी की यातना-गाथा और उसकी अस्मिता की तलाश निरंतर जारी रही।

नवें दशक में बंगला में जितना साहित्य-सृजन हुआ, उनमें उपन्यासों की संख्या सर्वाधिक है। बंगला में उपन्यास सबसे अधिक लोकप्रिय विधा है। उपन्यास लिखे बिना किसी की स्थिति सम्मानजनक नहीं बन पाती। इस दशक में एक ओर जहाँ सामाजिक उपन्यास लिखे गए वहाँ रहस्य-रोमांच से भरपूर उपन्यास भी लिखे गए। हाँ, राजनीतिक उपन्यासों में कमी जरूर आई। इसलिए कि राजनीति से साधारण व्यक्ति का ही नहीं लेखक

समुदाय का मोहभंग हो चुका था। राजनीति की कुरूपता से बचराकर ही शायद कोई लेखक उधर नजर डालना नहीं चाहता। परंतु अन्य सामाजिक, आर्थिक पहलुओं पर लेखक लगातार लिखते रहे जिसमें आधुनिक दुनिया का सत्य सदा उजागर होता रहा। परकाले राजा रानी स्व. आशुतोष गुरुनारायण की अंतिम कृति है। उनके उपन्यासों में समकालीनता का गहरा बोध है और विविध चरित्रों की गहराइयों में मापन का। इस उपन्यास में एक नारी के अतोखे चरित्र का आख्यान है। कलकत्ते के पास ही एक कस्बा है मोहनपुर। वहीं की एक नारी हैं रानी। इस उपन्यास की केंद्र बिंदु। उसके जीवन में प्रेम की मंदाकिनी बहती है, वहाँ आनंद की लहरें उठती हैं तो ईर्ष्या की अग्नि भी प्रज्वलित होती है। पर संघर्ष का स्वर प्रबल है। जद्दोजहद का सिलसिला अंतहीन है। परिस्थिति की विपमता के मध्य उसका चरित्र किस सत्यता की ऊंचाई का स्पर्श करता है, वह आखंत किस प्रकार पाठकों से तादात्म्य की अनुभूति करती है, यही दर्शनीय है।

इस दशक में प्रेम, रोमांस, समर्पण, पारस्परिकता की पारंपरिक अवधारणा में परिवर्तन आया। नारी का भोग्या और कामिनी रूप देह के भूगोल से निकल कर अपनी अस्मिता की खोज में लग गया। डॉ० महेन्द्र भटनागर के शब्दों में कहा जा सकता है :

“इसमें नारी पूर्ण की अपेक्षा अधिक सक्रिय और साहसी है। प्राचीन परंपरागत नैतिक मूल्यों को दी जाने वाली उसकी चुनौतियों ने हिंदी उपन्यास के तेवर जहाँ एक ओर बड़े आक्रामक बनाए हैं, वहाँ दूसरी ओर उन्हें भौतिकवादी धरातल भी प्रदान किया है।”

हिंदी में शशि प्रभा शास्त्री का उपन्यास ‘उम्र एक गलियारे की’ तथा सतीश भादुड़ी का उपन्यास ‘स्वर’ की तुलना ‘परकाले राजारानी’ से की जा सकती है। पुरुष की दृष्टि में नारी कामिनी और भोग्या मात्र है। इसके आगे कुछ नहीं न साथी, न हमदम। सुनंदा को सब कुछ याद आता है और अपने गुड़िया रूप पर क्रोध भी :

“औरत आदमी के लिए सजी-धजी रहे, गुड़िया बनी अपने को खिलवाती रहे खुद कुछ न सोचे, न चाहे, गुड़िया की तरह बेजान संवेदनहीन दिखे, बजाने पर सिर्फ चूँ-चूँ बोले, गिराने उठाने पर पटवोजने की तरह आँखें खोल बंद करे और हरदम मुस्कराती रहे।”¹⁵

ज्वार में भी नारी स्वातंत्र्य के संदर्भ में कुछ ज़रूरी सवाल उठाये गए हैं जो उसके बाह्य व्यक्तित्व तक ही सीमित नहीं हैं। वलिक उनकी अस्मिता में गहरे तक जुड़े हुए हैं। नारी विवहित हो या अविवाहित आर्थिक स्वतंत्रता उसके लिए बहुत ज़रूरी है। परंतु आर्थिक रूप से स्वावलंबी स्त्रियाँ भी क्या इस समाज में अपने आत्म-सम्मान, स्वाभिमान और स्वातंत्र्य को बनाए रख सकती हैं ?

नारी का संघर्ष नाना रूपों में बगला उपन्यासों में उजागर हुआ है। अबुल वाशार बंगाली उपन्यासकारों में चर्चित नाम हैं। उनके ‘गुरु स्वर्ग’ में नारी का एक दूसरा रूप ही उजागर होता है। ‘गुरु स्वर्ग’ की पृष्ठ भूमि सांकेतिक है। इसमें एक ऐसे भूखंड की कथा है जिसके एक तरफ उत्तर में कृष्ण सागर है और दक्षिण में अरब का रेगिस्तान। पूरब में

है परसिया और पश्चिम में भूमध्य सागर। अर्थात् एक ओर रेगिस्तान और दूसरी ओर शस्यश्यामला भूमि। इसी खंड में कुछ लोग रेगिस्तान छोड़कर हरियाली की तरफ बढ़ते हैं किंतु बार-बार पथ में बाधाओं की सेना खड़ी हो जाती है। और उन्हें रुकने के लिए विवश होना पड़ता है। महभूमि के निवासियों ने स्वर्ग की कल्पना की थी और इसकी पूर्ति के लिए जरूरत पड़ी थी नारी की। ऐसी ही नारी है उपन्यास की नायिका रिविका। जिसे देखकर 'कामायनी' याद आ जाती है :

“तुमुल कोलाहल कलह में, मैं हृदय की बात रे मन।”

यहां अबुन बागार ने रिविका के चरित्र को पुरुष की कामनाओं और आशाओं का आश्रय स्थल बनाया है जहाँ पुरुष को सुकून मिले, तनाव से मुक्ति भी। रिविका पुरुष के त्रिकोण से घिरी है। इनमें से एक से वह प्रेम करती है, दूसरा उससे सिर्फ यौन तृप्ति चाहता है और तीसरे के प्रति वह लापरवाह है। परंतु काल चक्र ऐसा चलता है, परिस्थितियां ऐसा मोड़ लेती हैं कि रिविका को तीसरे का सहारा लेना पड़ता है। लेखक यह संदेश देना चाहते हैं कि नारी नाना भूमिकाओं में जी सकती है परन्तु अलग-अलग भूमिकाओं में उसे ईमानदार रहना होगा। एक भूमिका का हस्तक्षेप दूसरी भूमिका के साथ नहीं करना होगा। नारी-चरित्र की यही खूबी उसे महान बनाती है और संघर्ष करने के लिए सूक्ष्म भी। ‘हीरामन हाई स्कूल’, (कुसुम कुमार)⁶ की लाडो को बंटे हुए समाज की विसंगतियों से गुजरना पड़ता है। नाना भूमिकाओं में नाना लांछनों और परिधियों में पर वह सब में सामंजस्य बनाते हुए जिजीविषा के स्वर को जिलाए रखती है।

बंगला उपन्यासों में नारी चेतना का वह रूप भी चित्रित है जिसमें परंपरा, रूढ़ि, बंधन, मर्यादा में जीती हुई कम उम्र की युवती बाल विधवा वंदना भी कालांतर में नारी-मुक्ति चेतना की प्रतीक बन जाती है। और क्रूर सामाजिक नियमों, कुसंस्कारों और अत्याचारों के खिलाफ साहस और दृढ़ता का परिचय देती है। वही वंदना अपने श्वसुर का आदेश पालती थी। सफेद कपड़े पहनती है। ऐसे परिवार में रहती है जहाँ आधुनिकता की हवा तक नहीं पहुंची है। चार वर्षीय पुत्र अभिरूप ही उसका एकमात्र सहाग है। पर सहने की सीमा टूट जाती है। प्राचीन रूढ़ियों और कुसंस्कारों के विरुद्ध आंदोलन खड़ा हो जाता है। यह उपन्यास है वाणी वसु का ‘श्वेत पाथरेरशाला।’

हिंदी में नारी-चेतना से आत्यायित अनेक उपन्यास हैं जिनमें वंदना के रूप को देखा जा सकता है। वंदना के समान विद्रोहात्मक नजरिया महसूस जा सकता है। ‘तुम्हारी रोशनी में’ (गोविंद मिश्र)⁷ में सुवर्णा सरीखी उच्च वर्गीय शिक्षित और संवेदनशील नारी की समस्या उठाई गई है। सुवर्णा जैसी कुछ कामकाजी महिलाएं घर-बाहर परंपरा आधुनिकता, प्रवृत्ति-विधान के द्वंद से गुजरने के लिए प्रायः बाध्य होती हैं। ‘शहर यार’ (स्वदेश भारती) के केन्द्र में है काजल निम्न मध्यवर्गीय परिवार की काजल ने आजीवन संघर्ष किया। वंदना हो या सुवर्णा या काजल संघर्ष की अशेष क्षमता लिए हुई है और अनवरत जूझती है। काजल पर उपन्यासकार की टिप्पणी है :

“सामाजिक, आर्थिक, यांत्रिक, महाजनी सभ्यता के जंगल में वह जीवन भर भटकती रही। समय के महासमुद्र तट पर मरने की कोशिश करती रही, एक कतरा सुख से आत्मसम्मान का रिक्त कलश।”⁸

बुद्ध देव गुह-के 'रिया' उपन्यास में रिया और संज्ञा नामक दो नारियां हैं। जिनका प्रेम अनिच्छ (एक ही नायक) से है। इसमें दोनों नारियों के प्रेम के उच्छल प्रवाह का सहज चित्रण है। लेखक संदेश देता है कि नारियों को सहज प्रेम उपलब्ध हो तो उसमें वह खो जाती है। अन्यथा बंगला के उपन्यासों में नारी संघर्ष का स्वर है, पर उतना प्रबल व व्यापक नहीं, जितना हिंदी उपन्यासों में है। इसका कारण है एक का पूरा परंपरावादी होना, दूसरे का विद्रोहात्मक रूप है।

□

संदर्भ—

बंकिम समग्र : संपादक-विजय प्रकाश वेरी, हिंदी प्रचारक संस्थान, पो. बा. 1105, पिशाचमोचन, वाराणसी 221001, प्रथम संस्करण 1987 प्रस्तावना उपरिवत्, प्रस्तावना

वार्षिकी 1990, केन्द्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली-110066 में बंगला साहित्य पर सुरेन्द्र तिवारी का लेख, पृष्ठ 122

हिंदी कथा साहित्य विविध आयाम, 1988, आत्माराम एंड संज, दिल्ली, पृष्ठ 74

उम्र एक गलियारे की : शशिप्रभा शास्त्री

प्रथम संस्करण 1989, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 दरियागंज, नई दिल्ली-110002

वार्षिकी 1985, पृष्ठ 578

शहरयार : स्वदेश भारती, वार्षिकी 1985, पृ० 579—वृन्दावन, राजेन्द्रपथ, धनबाद 826001

कृपया शुल्क भेजते समय ग्राहक संख्या का उल्लेख अवश्य करें।

—सं०

एक नज़र अपनी

वैज्ञानिक दृष्टि, समन्वय और सामंजस्य का प्रतिफलन

□ डॉ० वीरेन्द्र सक्सेना

मेरे तीन में से दो उपन्यास “खराब मौसम के वावजूद” (1991) तथा “खोजा तिन पाइयां” (1995) दसवें दशक में ही प्रकाशित हुए हैं और पहला उपन्यास “खंडित राग” (1989) भी दसवें दशक के कुछ ही पहले प्रकाशित हुआ था। इन तीनों उपन्यासों के माध्यम से मैंने समकालीन जीवन विशेष रूप से मध्यवर्गीय जीवन की अनेक विडंबनाओं, विषमताओं, विसंगतियों, असंगतियों, और जटिलताओं को ही प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। साथ ही यह प्रयत्न भी किया है कि पाठक के मन में उन्हें पढ़कर एक ऐसा द्वंद्व उभरे कि वह सोचने को विवश हो और स्थितियों के अनुसार उनमें निबटने की समझ भी विकसित कर सके।

यहीं मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहूंगा कि मैंने अपने ये उपन्यास केवल लिखने के लिए नहीं लिखे, बल्कि कुछ “कहने” के लिए लिखे हैं। शायद इसीलिए उनमें प्रस्तुत जीवन का यथार्थ केवल वह नहीं है, जो “हुआ था” या “होता है”, बल्कि वह भी है जो “हो सकता है”, या जो “होना चाहिए।” इसके लिए सर्वप्रथम मैं प्रथम उपन्यास “खंडित राग” का उदाहरण देना चाहूंगा, क्योंकि उसका “अन्तिम अंश” पर्याप्त विवादास्पद माना गया था। विवाद का मुख्य कारण यह था कि उसमें 21 वर्षीय नायक विनय और उसकी 18 वर्षीय प्रेमिका निर्मला के बीच इस बात को लेकर मतभेद हो जाता है कि “प्रेम” में काम-भावना होनी चाहिए या नहीं। इसी मतभेद के कारण जब विनय, निर्मला को विवाह से पहले ही आलिंगन-बद्ध करके उसे निर्वसन करना चाहता है, तो वह स्पष्ट इन्कार कर देती है। विनय इसी कारण उसे “फ्रिजिड” समझ लेता है और स्वयं भी उससे मुंह मोड़ लेता है। “फ्रिजिड” समझने का एक अन्य कारण यह भी है कि उन्हीं दिनों विनय एक

अन्य समयस्क स्त्री से “पूर्ण संपर्क” का अनुभव प्राप्त कर चुका है ! अस्तु, उपन्यास का अन्त “दुःखान्त” हो जाता है, क्योंकि दो सच्चे और अच्छे प्रेमियों का “राग” खंडित हो जाता है। वस्तुतः इस दुःखद अन्त के माध्यम से ही मैं अपने पाठकों तक यह सन्देश पहुंचा सकता था कि प्रेम और विवाह में काम-भावना (सेक्स) की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है और उसे किसी भी दृष्टि से घृणित या हेय नहीं समझना चाहिए। “काम-संबंधों के यथार्थ” पर स्वयं मैंने अपनी पी एच० डी० की उपाधि के लिए जो शोध-कार्य किया था और विश्व के कई दूसरे यौन विज्ञानियों और समाजशास्त्रियों ने जो सर्वेक्षण किए हैं, उनसे भी इस बात की पुष्टि होती है कि बिना सेक्स के प्रेम या विवाह अपूर्ण या खंडित ही है और उसे किसी भी दृष्टि से सफल नहीं माना जा सकता। अतः जब मैंने “खंडित राग” लिखा, तो प्रेम, काम और विवाह के बारे में एक पूर्णतः वैज्ञानिक और समन्वित दृष्टिकोण का प्रस्तुतीकरण ही मेरे मन में था और वही मैंने किंचित अतिकल्पना के आधार पर किया भी, यद्यपि उसके लिए मुझे अनेक प्रकार की प्रशंसा के बावजूद कुछ मित्रों और पाठकों की टीका-टिप्पणी भी सहनी पड़ी।

अपने दूसरे उपन्यास “खराब मौसम के बावजूद” में मैंने अपने 21 वर्षीय युवा नायक विनय को 42 वर्षीय परिपक्वावस्था तक पहुंचा दिया और तब उसके माध्यम से दिल्ली और बम्बई जैसे महानगरों के मध्यवर्गीय जीवन में सम्भावित प्रेम, सेक्स और विवाह की जटिलताओं का चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया। यहां परिस्थितिवश एक ही नायक विनय के जीवन में अलग-अलग स्वभाव और गुणों वाली कई प्रेमिकाएं यथा कुसुम, वैदेही और प्रवीणा आदि आती हैं और उनके माध्यम से समकालीन जीवन की जटिलताएं भी सामने आ जाती हैं। इस उपन्यास में अपने नायक विनय (या डा० विनय श्रीवास्तव) के अलावा कई अन्य पात्रों और साहित्य एवं फिल्म जगत के प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन का चित्रण भी मैंने प्रस्तुत किया है और यह बताना चाहा है कि जब स्त्री और पुरुष एक साथ काम करते हैं, तो उनमें विवाहपूर्व और विवाहेतर सम्बन्ध भी विकसित हो सकते हैं और वे सम्बन्ध वैवाहिक जीवन पर विपरीत प्रभाव डाल सकते हैं। तब इसका उपाय या समाधान क्या हो? वास्तव में ऐसी स्थितियों या जटिलताओं का कोई सीधा सर्वमान्य समाधान है नहीं, इसलिए “खराब मौसम के बावजूद” में भी समाधान “खुला” रखा गया था और उसे पाठकों के विवेक पर छोड़ दिया गया था।

लेकिन इसी “खुले समाधान” के कारण, जहां अनेक समीक्षकों ने इसे सराहा, वहीं कुछ पाठकों ने प्रश्न किया, आखिर लेखक कहना क्या चाहता है? क्या वह मात्र यथार्थ स्थितियों का चित्रण करके संतुष्ट है या कुछ संदेश भी देना चाहता है? इस सम्बन्ध में मेरा उत्तर यही है कि मैंने “खराब मौसम के बावजूद” में अपने नायक डॉ० विनय श्रीवास्तव के “चिंतन” के माध्यम से ही अपना “संदेश” भी दिया है—

“वह किसी भी रास्ते को “आदर्श” नहीं मान पा रहा था। उसे लग रहा था कि मनुष्य ने विवाह संस्था का “आविष्कार” अपने सुख-संतोष के लिए किया, लेकिन अब वहीं संस्था उसके सर्वांगीण विकास के लिए, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री—स्त्री के लिए तो और भी अधिक बंधन सिद्ध हो रही है। लेकिन किसी उपयुक्त विकल्प के अभाव में वह उससे मुक्त भी नहीं हो सकता।” (पृ० 251)।

उल्लेखनीय है कि इसी क्रम में नायक का यह निष्कर्ष भी पाठकों के लिए विचारणीय है—

“मनुष्य अब तक प्रेम, विवाह और सेक्स का आदर्श क्रम” तक तय नहीं कर पाया है, क्योंकि जो भी क्रम इस समय दुनिया में प्रचलित है, उनमें कोई भी पूर्ण संतोषप्रद प्रतीत नहीं होता। उदाहरणार्थ (1) प्रेम-विवाह-सेक्स (2) प्रेम-सेक्स-विवाह (3) विवाह-सेक्स-प्रेम (4) विवाह-प्रेम-सेक्स (5) सेक्स-प्रेम-विवाह तथा (6) सेक्स-विवाह-प्रेम जैसे क्रमों में ऐसा कोई भी “आदर्श क्रम” नहीं है, जिसमें विवाह के साथ ही प्रेम और सेक्स का अपने आप समावेश हो जाए। नतीजा यह होता है कि किसी न किसी घटक को कमी महसूस होती रहती है और वैवाहिक जीवन धीरे-धीरे भीतर ही भीतर नष्ट होता रहता है। फिर उसका पता तब चलता है, जब प्रेम या सेक्स के लिए किसी तीसरे का आगमन होता है और विवाह स्वतः भूतप्राय हो जाता है।” (पृ० 201)।

मैंने अपने तीसरे उपन्यास “खोजा तिन पाइयाँ” में प्रेम, काम और विवाह की इन्हीं जटिल समस्याओं को और अधिक व्यापक परिप्रेक्ष्य में समकालीन विश्व परिदृश्य को ध्यान में रखकर समझने-समझाने का प्रयास किया है और उसमें प्रेम की सफलता के लिए विवाह विवाह को तोड़ने या प्रेम को तोड़ने या प्रेम को छोड़ने की दुविधा से भी साक्षात्कार कराया है। इस उपन्यास में मेरा नायक डॉ० विनय श्रीवास्तव और भी परिपक्वावस्था तक पहुँच चुका है, यानि अपनी आयु के 50 वर्ष पूरे कर चुका है तथा जीवन-यापन के संदर्भ में भी अनेक प्रकार के कार्यों के अनुभव बटोर चुका है। तभी इस उपन्यास में मेरे नायक के जीवन में अपेक्षाकृत आधुनिक दृष्टि सम्पन्न नायिका “अनुभूति” का आगमन होता है और वह उस अनुभूति के व्यक्तित्व को आत्मसात करके स्वयं अपने व्यक्तित्व में भी बहुत कुछ जोड़ता है। इसके लिए वह इस उपन्यास में प्रेम और स्त्री-पुरुष मैत्री के स्थायित्व के लिए वैज्ञानिक निष्कर्षों और समकालीन हिन्दी साहित्य के अध्ययन के साथ कुछ निजी प्रयोग भी करता है। इन्हीं प्रयोगों में एक महत्वपूर्ण प्रयोग है—शारीरिक आकर्षण को स्वीकार करते हुए भी उस पर नियंत्रण रखने का प्रयोग। इसके लिए वह अनुभूति के निर्वसन शरीर का स्पर्श तो करता है, पर समय और अवसर की अनुकूलता के बावजूद भोग नहीं करता।

कहने की आवश्यकता नहीं कि “खंडित राग” के “अंतिम अंश” की भांति “खोजा तिन पाइयाँ” के उक्त “प्रयोग” को भी कई समीक्षकों और पाठकों ने पर्याप्त विवादास्पद माना है और यहां तक कहा है कि इस प्रकार के प्रयोग की सफलता संदिग्ध है। इस संबंध में मेरा पुनः निवेदन है कि किसी उपन्यास में प्रस्तुत यथार्थ केवल तर्क और कारण-कार्य के आधार पर अर्थात् वैज्ञानिक दृष्टिकोण से परखा जाना चाहिए न कि भावनात्मक स्तर पर। क्योंकि उसमें “जो हुआ था” या “हो सकता है” के साथ “जो हो सकता है” या “जो होना चाहिए” का भी चित्रण होता है। इसी संदर्भ में उक्त प्रयोग के उद्देश्य को नायिक-नायिका के निम्न वार्तालाप से समझा जा सकता है :—

“क्या काम को जीतकर पूर्ण प्रेम संभव है? क्या यह भी एक प्रकार की हिपांक्रेसी नहीं होगी?”

“हिपांक्रेसी तो तब होगी, जब हम कहें कुछ और करें कुछ और। जब मेरे मन में

यह कामना ही नहीं होगी कि आपके साथ काम-संबंध स्थापित करूँ, तो कामविहीन प्रेम या मैत्री स्वतः स्थापित हो जाएगी। फिर हिपॉक्रेसी कैसे हुई ?”

“विनय ने आगे जोड़ा, “मैं आपके व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ, इसीलिए आपको मित्रवत् स्वीकार किया। स्त्री-पुरुष मैत्री कालांतर में प्रेम-संबंध में भी बदल जाता है, लेकिन प्रेम, काम से अधिक व्यापक शब्द या समुच्चय है। प्रेम में काम का अंश हो सकता है, लेकिन प्रेम मात्र काम नहीं है।”

“मुझे पता नहीं चल रहा आप क्या कहना या नया जोड़ना चाहते हैं”, अनुभूति पूरी गंभीरता से बोली, “क्या इसी तरह के विचार पहले भी सामने नहीं आ चुके हैं ?”

“पुराने विचारों पर भी नए संदर्भों में पुनर्विचार की जरूरत होती है। आज के सामाजिक जीवन में एक व्यक्ति के संपर्क में कई-कई विपरीतलिंगी व्यक्ति आते हैं। उनसे मैत्री हो जाती है, प्रेम भी हो सकता है। लेकिन क्या सभी से काम-संबंध स्थापित किए जा सकते हैं ? मुझे लगता है आज के पारिवारिक विघटन और वैयक्तिक विघटन के मूल में इसी तरह के अनियंत्रित काम-संबंध ही हैं। अनियंत्रित होने के कारण ही इस तरह के काम-संबंध भावनात्मक या आर्थिक शोषण को भी बढ़ावा देते हैं।” (पृ.-179-180)

अपने इन्हीं प्रयोगात्मक निष्कर्षों के बल पर “खोजा तिन पाइया” का परिपक्व नायक डॉ० विनय श्रीवास्तव अपने विवाह और विवाहेतर प्रेम के बीच सामंजस्य की खोज करता है तथा सेक्सयुक्त वैवाहिक संबंध तथा सेक्सविहीन विवाहेतर प्रेम-संबंध जारी रखने का निश्चय करता है। इस खोजापूर्ण निष्कर्ष के वावजूद नायक अपने निष्कर्ष को सर्वमान्य निष्कर्ष के रूप में स्वीकारे जाने का दावा नहीं पालता, बल्कि अपने नाम के अनुरूप विनम्रतापूर्वक यह भी स्वीकारता है—“निष्कर्ष यही है कि अंतिम निष्कर्ष कुछ नहीं है। फिर भी कोई कोशिश करे, तो संबंधों को प्रेमपूर्वक निभाया जा सकता है। फिर भी कोई कोशिश करे, तो संबंधों को प्रेमपूर्वक निभाया जा सकता है। दूसरा निष्कर्ष यह है कि हर संबंध का अपना महत्व है—उससे व्यक्ति बहुत कुछ सीखता है। एक प्रकार से अपने व्यक्तित्व में बहुत कुछ जोड़ता है—उसका विकास करता है।” (पृ०—255)

अस्तु “खंडित राग” के बाद “खराब मौसम के वावजूद” की स्थितियों से गुजरकर ही मेरे इन उपन्यासों का नायक विनय या डॉ० विनय श्रीवास्तव “खोजा तिन पाइया” में प्रेम, सेक्स और विवाह के संबंध में समकालीन वैश्विक संदर्भों में अपने वैज्ञानिक निष्कर्षों को व्यावहारिक धरातल तक ले जाता है और उन्हें अपने जीवन पर भी लागू करने की चेष्टा करता है। यहाँ मैं यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि “खंडित राग” में चित्रित प्रेम, सेक्स को नकारने के कारण अपूर्ण रहा है और “खराब मौसम के वावजूद” में प्रेम, सेक्स को स्वीकार कर पूर्णता को प्राप्त हुआ है। बाद में “खोजा तिन पाइया” में वही प्रेम सेक्स नियंत्रित करके और भी परिपक्व हुआ है। मेरे विचार में प्रेम की इन तीनों स्थितियों या अवस्थाओं में किसी प्रकार का विरोधाभास नहीं है, बल्कि यह तीनों ही स्थितियाँ या अवस्थाएँ स्त्री-पुरुष के बीच प्रेम या अंतरंग मैत्री के विविध सोपान ही हैं। मुझे प्रसन्नता है कि मैं अपने इन तीनों उपन्यासों के माध्यम से प्रेम के इन सोपानों को प्रस्तुत कर सका

और प्रेम, विवाह और सेक्स संबंधी अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अधिकांश समीक्षकों और पाठकों तक पहुंचाने में सफल भी हुआ।

अपने उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया के विस्तार में जाने का यह अवसर नहीं है, किन्तु प्रसंगवश उनके सामाजिक एवं अन्य पक्षों तथा शिल्प एवं भाषा-शैली के बारे में भी कुछ सूचनाएं देना यहां अप्रासंगिक नहीं होगा। इसी संदर्भ में मैं, समकालीन समीक्षक डॉ॰ वेदप्रकाश अमिताभ के विचार भी उद्धृत करना चाहूंगा—“अधिकतर समीक्षकों ने वीरेन्द्र सक्सेना के उपन्यासों की समीक्षा सिर्फ काम-संबंधों के संदर्भ में की है। लेकिन वीरेन्द्र सक्सेना के उपन्यास अनुभव के संकरेपन के शिकार नहीं हैं। उनमें अपने समय की सच्चा-इयां पर्याप्त स्थान घेरती हैं और समकालीन यथार्थ की विश्वसनीय अभिव्यक्ति कई स्थलों पर हुई है। इसी क्रम में उन्होंने आगे लिखा है—“खंडित राग” में अष्टग्रह योग और उससे संबंधित रूढ़िवादी दृष्टिकोण, मथुरा-वृंदावन के पंडों का पाखंड, तत्कालीन राजनैतिक सरगमियां आदि के बयान से “खंडित राग” में उस परिवेश का निर्माण हुआ है, जिसमें विनय-निर्मला के रागात्मक संबंध जन्मे और विकसित हुए हैं। समय संशक्ति और समाज-बोधी चेतना “खराब मौसम के बावजूद” में अपेक्षाकृत अधिक है। विनय मौसम विज्ञान विभाग में अधिकारी है, अतः उसके अवलोकन बिन्दु से प्रशासनिक भ्रष्टाचार, सरकारी कार्यालयों में हिंदी की दुर्गति, कमेंट और ईमानदार व्यक्तियों की यातना, महिलाकर्मियों की दिक्कतें आदि को जहां-तहां बेबाकी से उद्घाटित किया गया है।... विनय का सरकारी नौकरी छोड़ने का निर्णय निजी प्रतिवाद का सूचक भर नहीं है, यह व्यवस्था के विरोध का सोच-विचार कर किया गया निर्णय है।” और मेरे नवीनतम उपन्यास “खोजा तिन पाइयां” के बारे में भी डॉ॰ अमिताभ ने लिखा है—“निदेशक का पद ग्रहण करने के बाद विनय के सामने तंत्र की भ्रष्टता, राजनीतिक कदाचार आदि के नए पुष्ठ खुलने लगते हैं।... धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में भी स्थिति निराशाजनक है, अपनी हरिद्वार और पुष्टापत्ती यात्रा के अनुभवों से विनय इसी नतीजे पर पहुंचता है।... एक से अधिक स्थलों पर महात्मा गांधी को उद्धृत कर उपन्यासकार ने अपने मानवतावादी रुझान को स्पष्ट कर दिया है।”

डॉ॰ अमिताभ की तरह कई अन्य समकालीन समीक्षकों, जैसे डॉ॰ हरदयाल, डॉ॰ मृत्यंजय उपाध्याय आदि ने भी मेरे सभी उपन्यासों को पढ़कर यह मत व्यक्त किया है कि वे केवल प्रेम या काम-संबंधों के उपन्यास नहीं हैं, उनमें अन्य-अन्य सामाजिक, धार्मिक या राजनैतिक पद भी यथास्थान विवेचित हुए हैं। इसलिए इस बारे में अब मेरे द्वारा इतनी सूचना ही पर्याप्त होगी कि अपने उपन्यासों में मैंने स्त्री-पुरुष संबंधों (जो मेरा शोध-विषय भी रहा है) के साथ अन्य मानवीय संबंधों और पारिवारिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक या राजनीतिक स्थितियों की भी पड़ताल की है। हाँ, इतना अवश्य है कि उपन्यासों की सीमाओं को देखते हुए इस प्रकार की पड़ताल नायक विनय के अवलोकन-बिन्दु से ही संभव हुई है।

अब अंत में कुछ शब्द अपने उपन्यासों के शिल्प भाषा-शैली के बारे में भी। मैं मूलतः विज्ञान का छात्र था और मैंने सर्वप्रथम सांख्यिकी में ही स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त की थी। अतः सांख्यिकी का ज्ञाता होने के कारण मैंने अपने उपन्यासों में कई स्थलों पर गणितीय सूत्रों और संख्याओं का भी उपयोग किया। यह कुछ उसी तरह था, जैसे मध्यकालीन साहित्य में दर्शन और धर्म के सिद्धांतों का उपयोग किया जाता था। इसी तरह मैंने उपन्यासों को

विश्वसनीय और रोचक बनाने के लिए अपने समय की वास्तविक घटनाओं और प्रसिद्ध व्यक्तियों के जीवन से जुड़े कुछ प्रसंगों का भी उपयोग किया। यह अवश्य है कि इस सबके कारण ही उपन्यासों की भाषा अधिकांशतः विवरणात्मक एवं सपाट रह गई, किन्तु उसका मुझे अफसोस नहीं है, क्योंकि मैं अपने कथ्य को विद्वानों के साथ सामान्य पाठक तक भी पहुंचाना चाहता था। हां, कई स्थलों पर सपाटबयानी में आकर्षण बनाए रखने के लिए मैंने अपने उपन्यासों में कई प्रकार की शैलियों को भी अपनाया, जिसमें पत्रात्मक शैली, डायरी शैली और यात्रा-वृत्तांत जैसी शैली भी शामिल हैं। इसी तरह सपाटबयानी की एकरसता को तोड़ने के लिए मैंने रोचक और सार्थक संवादों तथा मार्मिक प्रसंगों की भी सहायता ली है।

निष्कर्षतः मैं कहना चाहूंगा कि विज्ञान का विद्यार्थी और वैज्ञानिक सोच का पक्षधर होने के कारण मैंने जीवन की जटिलताओं को भी कारक-कार्य के आधार पर तर्कसंगत वैज्ञानिक दृष्टिकोण से ही समझने की कोशिश की है और यही दृष्टिकोण मेरे तीनों उपन्यासों में उभर कर आया है लेकिन वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ केवल स्वार्थ का उपभोक्तावादी दृष्टिकोण न जुड़ जाए, इसलिए मैंने मानवीय सरोकारों के लिए समन्वय और सामंजस्य का रास्ता भी अपनाया और उसी का चित्रण अपने उपन्यासों में किया। इस सबमें मैं वास्तव में कहां तक सफल हुआ हूं और मेरे उपन्यास मेरे या अन्य लेखकों के दसवें दशक के आगामी उपन्यासों को किस प्रभावित करेंगे, इसका निर्णय तो भविष्य ही कर पाएगा ! □

आग्रह !

वार्षिक सदस्यता शुल्क निम्न पते पर 10 रु० डिमाण्ड ड्राफ्ट/धनादेश/पोस्टल ऑर्डर से भेज कर समय भी बचाएं : असुविधा भी।

पता :

एडीशनल सेक्रेटरी शीराजा हिन्दी, जे० एंड के० अकादमी ऑफ आर्ट कल्चर एंड लेंगेविज, जम्मू-180001।

००

प्रकाशित कृति को समीक्षार्थ भेजते समय कृपया दो प्रतियां भेजना न भूलें।

—सं०

स्मरण

भारतीय संस्कृति के समन्वय—सूर्य संत नामदेव

□ डा० सुषमा सरल

भारत के संत कवि रुढ़िवाद, ऊंच-नीच और जाति-पाति के भेद तथा अत्यधिक सांसारिकता के विरुद्ध उपदेश करते आए हैं। ऐसे ही एक महान् संत नामदेव हुए जिन्होंने अपनी मातृ भाषा मराठी के साथ-साथ हिन्दी में भी काव्य रचना कर सामान्य जनता तक अपना संदेश पहुंचाया। उन्होंने अध्यात्म की गहन बातों को सामान्य लोगों की भाषा में और सामान्य शब्दावली में प्रस्तुत किया। संत नामदेव का जन्म शक 1192 प्रभव नाम संवत्सर कार्तिक शुक्ला एकादशी रविवार 26 अक्तूबर 1270 ई० को हुआ था यही दिन महाराष्ट्र के लिए मंगलमय दिन है। इनकी जन्म कुण्डली बनाई गई तो ब्राह्मणों ने दाम सेठ को बताया कि यह बालक विट्ठल भगवान् का महान् उपासक होगा, और भविष्य में 'नामदेव' नाम से सारे भारतवर्ष में विख्यात होगा। नामदेव की मां का नाम गोणाबाई, पिता का नाम दाम सेठ था। उनके कुल के मूल-पुरुष यदु सेठ जाति से शिपी (दर्जी) थे। महाराष्ट्र के परमगी जिग के नरसी वामनी ग्राम में जन्मे यदुसेठ का उपनाम रेलेकर था और वह कपड़े का व्यापार करते थे। उनकी पत्नी बड़ी पतिव्रता थी। यदुसेठ बड़े शांत स्वभाव के थे। दोनों पति-पत्नी हमेशा श्री विट्ठल भगवान् का भजन किया करते थे। इनकी छठी पीढ़ी में नामदेव हुए।

कहते हैं दो वर्ष की उम्र में ही नामदेव जी विट्ठल भगवान् का नाम अपने मुख से उच्चारण करने लगे। पांच वर्ष की आयु में उन्हें पाठशाला में पढ़ने भेजा गया। गुरुजी ने बालक नामदेव को बारह खड़ी लिखकर दी तो उसने कहा, 'मुझे तो तख्ती पर विट्ठल भगवान् का नाम लिखकर दो।'

गुरु म्हुणे नमयासी। काठी करें ओं नमः सिद्धासी ॥

ये रू म्हुणे तो आलिया हतासी। नरक सी ठाव कैसी ॥ 1

गुरु म्हणती कलं ताडन । ताडन रूपी हरी जाण ॥
सद्गुरु जडिती देहाभिमान । तंही ताडन हरिरूपी ॥२॥

अर्थात् तस्मिन् पर ओम् नमः सिद्धं क्यो नही लिखते, उस पर नामदेव जी बोले कि यदि (ओं नमः) जो परमात्मा का शुद्ध नाम है, हमें प्राप्त हो जावे तो फिर नरक में जाने का कोई कारण ही नहीं। तब गुरुजी ने कहा—‘वादविवाद पर तुम्हारी पिटाई करेंगे।’ इस पर नामदेव जी ने कहा—‘सद्गुरु तो देहाभिमान (अहंकार) को दूर करते हैं, वही गुरु हरि रूप है।’

नामदेव जी के माता-पिता बड़े ईश्वर भक्त थे। वे सदा विट्ठल भगवान के नाम का गान करते थे। अतः नामदेव जी पर इस भक्ति का प्रभाव पड़ा। वे भी अक्सर विट्ठल भगवान का गुणगान करने लगे। पंढरपुर में निरन्तर विट्ठल के नाम का श्रवण-भजन करते-करते नामदेव जी एक प्रकार से विट्ठलमय हो गए थे। आठ वर्ष की उम्र में नामदेव का विवाह गोविन्द सेठ सदाव्रते की कन्या राजाबाई से हो गया। इनके चार पुत्र—नारायण, महादेव, गोविन्द विट्ठल एवं एक पुत्री लिवाबाई हुई। नामदेव जी की विट्ठल भक्ति निरन्तर बढ़ती गई और सांसारिकता से उनका मन हटता गया, घर में दरिद्रता का अखण्ड वास हो गया। घर वालों ने उनका मन घर-संसार की ओर लगाने के अनेक यत्न किये परन्तु सब व्यर्थ रहा और अन्त में गुरु विसोवा खेचर के उपदेश से नामदेव जी पूर्ण रूप से संसार से विरक्त हो गए। यह वह समय है जब भारत में विदेशी आक्रमणों पर आक्रमण किये जा रहे थे तथा मुस्लिम शासन ने अपना विकास शुरू किया था, दिल्ली में तो मुस्लिम शासक राज भी कर रहे थे। उस समय उत्तर भारत में खिलजियों के सैनिक शासक भावी योजना बनाने में मग्न थे। अलाउद्दीन खिलजी के कानों में देवगिरि के यादव राजाओं के वैभव की कहानियां गुंज रही थीं। वह दक्षिण द्वार पर रहकर समय की प्रतीक्षा कर रहा था। सामाजिक जीवन भी उस समय अजीब तरह का था। सामान्य जनता जात-पात की जजीरों में जकड़ी हुई थी। वर्ण व्यवस्था का पालन बड़ी कठोरता से हो रहा था। संत, महात्मा और अन्य विचारशील व्यक्ति इस सामाजिक विषमता का अनुभव करने पर भी आंख मूंद कर इसे विधि का विधान मान रहे थे।

संत नामदेव के समय में महाराष्ट्र में नाथ तथा महानुभाव संप्रदाय दोनों अधिक प्रचलित थे। नाथ सम्प्रदाय स्पष्ट रूप से योग साधना का समर्थक तथा बाह्याडंबर का विरोधी था। महानुभाव पंथ बहुदेव उपासना तथा वैदिक कर्मकाण्ड का विरोधी तो था, परन्तु कृष्ण उपासक होने के कारण मूर्ति पूजा का विरोधी नहीं था। इसी महानुभाव पंथ के लीला लरित्र, सिद्धांत सूत्र, दृष्टान्त पाठ आदि ग्रन्थों से उस समय की सामाजिक स्थिति का थोड़ा-सा दर्शन होता है। उस समय होली, गुग्गा, नवमी याति नागपञ्चमी, पोला-बैलों का त्योहार बड़ी धूमधाम के साथ मनाने की प्रथा थी। शहर में रात के समय दीये जलाये जाते थे।

किसानों के दो वर्ग थे—एक वतनदार और दूसरा उपरि। ग्वाला, तेली, कुम्हार, कोली, नाई, कीर्तनकार, गाने-बजाने वाले, यांत्रिक, पारथी, ओझा, जादू, टोना करने वाले, पण्डांगना, और तकली सिकके बनाने वाले अपराधी भी होते थे। डाकुओं का बड़ा आतंक

था। डाकू मार्ग में राजा-महाराजाओं का खजाना लूट लेते थे। इस समय लोग गुलाम बनाकर बेचे जाते थे। चोरी के डर से सोना नारियल में छुपाकर जमीन में गाड़ दिया जाता था। गांव के झगड़े गांव के महाजन निपटाते थे। किसानों की हालत खराब थी। साहूकारों के कर्ज का बोझ उन पर हमेशा लदा रहता था और अकाल पड़ने पर तो उनका जीवन असहाय हो जाता था। बेगार की प्रथा थी। अपराधी की आंखें निर्दयता के साथ निकालने की कठोर सजा दी जाती थी।

संत ज्ञानेश्वर की भावार्थ दीपिका से भी तत्कालीन जनजीवन का थोड़ा बहुत ज्ञान मिलता है कि किसान को अपनी आमदनी का चौथा हिस्सा राजा को देना पड़ता था। तीन हिस्से वह एक जगह पर रखता था जिसे निट्टा या तिबड़ा कहा जाता था। गांव, मन्दिर तथा पंचायत का उल्लेख पाया जाता है। सेठ लोग रास्ते के बीच मकान बनाते थे और फिर राजा से वसीला लगाकर उसे पास करवा लेते थे। सोना चांदी का भाव बहुत ही सस्ता था। उस समय तांबा आज से महंगा था। लोग दयालु तथा न्यायी राजा को साक्षात् ईश्वर का अवतार मानते थे। इसी काल में या इसके पहले भी भारत में मुसलमान आये थे। पहले अरब समुद्र मार्ग से पश्चिमी किनारे पर आए। उन्होंने अपने लिये स्वतन्त्र न्यायाधीश की नियुक्ति की। रहने के लिए जगह मांगने पर उन्हें मस्जिदें दी गईं। उन्हें धर्मान्तर करने की मनाही नहीं की गई। अरबों के द्वारा यहां का कपास, नील, कमाया हुआ चमड़ा तलवार आदि माल निर्यात होता था। ज्ञानेश्वर के पहले अरब मौलवी के हिन्दू पण्डितों में वाद होते थे। उत्तर से अलाउद्दीन की सवारी होने तक दक्षिण में मुसलमानी सत्ता नहीं थी, हां, इस्लाम धर्म तथा मुसलमानों के व्यापार का दक्षिण को परिचय था।

इसी समय एक तरफ सनातन धर्मियों की कट्टरता शिखर पर जा पहुंची थी, दूसरी ओर स्वतन्त्रवांछियों की बंडखोर वृत्ति थी। राजा-महाराजा समाज का मत जानने में असमर्थ थे। उस समय की सामाजिक क्रांति में यादवों का बिल्कुल हिस्सा नहीं था। वे सामाजिक क्रांति के बिल्कुल विरुद्ध थे। यादव शासन के अन्तिम काल में महाराष्ट्र में शासन की दशा बिगड़ती जा रही थी मुसलमानों के आक्रमण के विरोध में खड़े होकर जनता का मार्गदर्शन करने की उनकी हिम्मत नहीं थी।

धर्म परिवर्तन के डर से भारतीय समाज में अतिशय रूढ़ियां शुरू हो गई थी लड़कियों का अपहरण किया जाता था। इनके डर से बाल विवाह की प्रथा शुरू हुई। सती प्रथा बढ़ गई। जजिया कर से बचने के लिए लोग मुसलमान होने लगे। ऐसी गड़बड़ी के समय में जनता में फैले हुए असन्तोष को शांत करने का प्राचीन सनातन धर्म को नवजीवन देने का कार्य भागवत वारकरी पंथ के प्रथम आचार्य संत ज्ञानेश्वर एवं प्रथम प्रचारक सन्त नामदेव जी ने किया। और जब हर व्यक्ति अपने स्वार्थ को ही प्राथमिकता दे रहा था तो संत नामदेव के कार्य का अध्यधिक महत्व बढ़ गया। क्योंकि जब सामान्य जनता घबरा उठी तो संत नामदेव जी उस घोर तमस को चीरते हुए सूर्य सदृश प्रकट हुए।

महाराष्ट्र के भागवत धर्म वारकरी सम्प्रदाय के प्रवर्तक तो संत ज्ञानेश्वर जी माने जाते हैं, पर देश में इस सम्प्रदाय का प्रचार करने का श्रेय नामदेव जी को ही है। क्योंकि

संत ज्ञानेश्वर जी के समाधि लेने के पश्चात् नामदेव जी 54 वर्ष जीवित रहे और मात्र हिन्दी-मराठी में कविता न बनाकर भागवत धर्म वारकरी सम्प्रदाय का दक्षिण से उत्तर तक प्रचार भी किया। संत नामदेव ने उत्तर भारत और दक्षिण भारत का समन्वय करने की दृष्टि से उत्तर भारत की चार बार यात्रा की। उनके जीवनकाल में भारत में आज के महाराष्ट्र राज्य के देवगिरि तक मुस्लिम राज्य फैल चुका था। उत्तर भारत में तो उनका एकछत्र अधिकार हो चुका था। जनता भयभीत थी। ऐसे समय में नामदेव जी ने पंढरपुर के वारकरी सम्प्रदाय की पताका उत्तर भारत में फहरा कर धार्मिक एकता स्थापित करने का महान कार्य किया। महाराष्ट्र प्रान्त में पांच प्रमुख सम्प्रदाय माने जाते हैं, इनमें श्रेष्ठतम वारकरी सम्प्रदाय है। हजारों वर्षों से प्रवाहिा वारकरी धारा दिन प्रतिदिन प्रवल होती जा रही है इसे महाराष्ट्र का भक्ति धर्म कहना भी अनूचित न होगा। यह सम्प्रदाय पूर्ण रूप से वैदिक है। पंढरपुर की पवित्र स्थली में इस सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ, यहीं यह पनपा और यहीं से इनकी शाखाओं का पूरे देश में विस्तार हुआ। महाराष्ट्र के प्रायः सब मान्य संत इसी मत के अनुयायी थे। पंढरपुर में ईंट पर खड़े भगवान विठ्ठल की भव्य मूर्ति है। पास के मन्दिर में भगवान की धर्मपत्नी रुक्मिणी जी की मूर्ति है। भगवान श्रीकृष्णचन्द्र का विठ्ठल रूप है। महाराष्ट्र की काशी, श्रीक्षेत्र पंढरपुर में आषाढ़ और कार्तिक की शुक्ला एकादशी को लाखों वारकरी एकत्रित होकर भगवद् भजन में तल्लीन हो जाते हैं। इस यात्रा का नाम वारी और करने वाले को वारकरी कहा जाता है (वारी-यात्रा, करी-करने वाला) इस प्रकार प्रतिवर्ष नियमपूर्वक पंढरपुर की यात्रा करने वाला वारकरी कहलाता है तथा वारकरियों के उपास्य श्री पंढरीनाथ, पांडुरंग, विठ्ठल हैं एवं मन्दिर में भगवान विठ्ठल अकेले ही विट (ईंट) पर खड़े हैं। रुक्मिणी जी का मन्दिर अलग है क्योंकि इस सम्प्रदाय में उत्तर भारत की तरह राधिका जी का उतना महत्व नहीं है, जितना रुक्मिणी जी का महाराष्ट्र में 'वारकरी' नियमित रूप से आषाढ़ी कार्तिकी की वारी तो करते ही हैं, माघी और चैत की भी यात्रा करते हैं। इन दो यात्राओं के अतिरिक्त हर महीने की एकादशी को भी पंढरपुर जाते हैं और भिन्न भिन्न जातियों के भक्त अपनी जाति का अभिमान छोड़कर विठ्ठल के नाम संकीर्तन में मस्त हो जाते हैं।

वालस्वरूप भगवान श्री विठ्ठल को तुलसी बहुत प्रिय है इसीलिए विठ्ठल के भक्त वारकरी गले में तुलसी की माला धारण करते हैं। इसलिए इस पंथ को मालकरी भी कहते हैं। माला धारण करने का रिवाज तो बहुत से सम्प्रदायों में है परन्तु उन सम्प्रदायों के अनुयायी तप करने के बाद उसे निकाल कर भी रख देते हैं, परन्तु वारकरियों में ऐसा नहीं। वे 108 तुलसी-काण्ठ की माला पहनते हैं, बीच में मेरुमणि रहती है तथा एक बार माला धारण करने पर वह अन्त तक धारण की जाती है। जिस प्रकार यज्ञोपवीत के बिना ब्राह्मण की कल्पना असम्भव है उसी प्रकार कृष्ण प्रिय तुलसी की माला धारण किये बिना कृष्ण भक्त वारकरी की सत्ता असिद्ध है। तुलसी की माला को इस सम्प्रदाय में अत्यधिक महत्व है और उसे किसी भी आश्रम में छोड़ा नहीं जा सकता। श्रीमद्भागवत में परमेश्वर को सर्वस्व अर्पित करने वाले भक्त को भागवत कहा गया है। वारकरी भी विठ्ठल को सर्वस्व अर्पण करता है अतः वह भागवत कहलाता है और इसी कारण से इस सम्प्रदाय का दूसरा नाम भगवत सम्प्रदाय भी है।

इस सम्प्रदाय के उद्भव के विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं, परन्तु, संत ज्ञानेश्वर, नामदेव, तुकाराम आदि वारकरी सन्तों की उक्तियों से यह पता चलता है कि प्राचीन काल में महाराष्ट्र में पुंडरीक नामक एक महात्मा पंढरपुर में तपस्या करते थे। उनकी भक्ति से प्रसन्न होकर जब भगवान् श्रीकृष्ण बालक का मनोरम रूप धारण कर उनके सामने गए तब पुण्डलीक ने उनके बैठने के लिये सामने पड़ी ईंट रख दी और भगवान् श्रीकृष्ण उसी ईंट पर खड़े हो गए। वारकरी सम्प्रदाय के अनुयायियों को विश्वास है कि भगवान् श्रीकृष्ण का यह रूप मूर्तिमान् हो गया, जो आज भी विद्यमान है। संत पुंडलीक का काल अभी तक अनिश्चित होते हुए भी इतिहासकार वि० का० राजवाडे अनुसार सन् 1128 के आसपास माना गया है परन्तु, अन्य तथ्यों से उनका काल बहुत प्राचीन सिद्ध होता है। कुछ भी हो पर यह स्वीकार अवश्य किया जाता है कि पंढरपुर निवासी भगवान् विट्ठल के आविर्भाव का सम्बन्ध संत पुंडलीक से है। प्रसिद्ध वारकरी संत वहिणाबाई, जो संत तुकाराम जी की शिष्या थी, का वारकरी सम्प्रदाय से सम्बन्धित यह अभंग इस विषय पर कुछ प्रकाश डालता है—

संत कृपा झाली । इमारत फला आली ॥1॥

ज्ञानदेव रचिला पाया । उभारिले देवालया ॥2॥

नामा तथाचा किकर । तेणे केला हा विस्तार ॥3॥

जनार्दन एकनाथा । ध्वज उभारिला भागवत ॥4॥

भजन करा सावकाश । तुका झाला से कलया ॥5॥

इस अभंग में वारकरी सम्प्रदाय रूपी मन्दिर के निर्माण का बड़ा ही सुन्दर अलंकारिक वर्णन है। “सन्तों की कृपा से वारकरी सम्प्रदाय रूपी मन्दिर का निर्माण हुआ। ज्ञानेश्वर जी ने इसकी नींव रखी। मन्दिर का निर्माण कार्य शुरू हुआ। नामदेव जी ने इसका प्रचार द्वारा विस्तार बढ़ाया। जनार्दन स्वामी तथा एक-नाथ जी ने इस पर भक्ति रूपी ध्वज खड़ा किया। तुकाराम जी ने मन्दिर का काम पूरा होते ही कलश चढ़ा दिया। अब केवल भगवान् का भजन करना ही बाकी है परन्तु यहां जानदेव के नींव रखने का यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने इस मत का समारम्भ किया। वास्तव में ज्ञानेश्वर और नामदेव के पूर्व भी यह सम्प्रदाय महाराष्ट्र में प्रचलित था। इधर-उधर बिखरे सूत्रों को एकत्र करके सम्प्रदायिक सुव्यवस्था देने का कार्य ज्ञानेश्वर जी ने किया, इसीलिए वे इस सम्प्रदाय के मान्य आचार्य माने जाते हैं। इस सम्प्रदाय के देवता श्री विट्ठल हैं, इसीलिए श्रीक्षेत्र पंढरपुर दक्षिण द्वारिका के नाम से प्रसिद्ध है।

वारकरी या भागवत सम्प्रदाय के विकास का इतिहास पांच कालखंडों में विभाजित हो सकता है। वारकरी सम्प्रदाय की उत्पत्ति तथा पंढरपुर निवासी विट्ठल की उपासना।

1. भक्त पुंडलीक से संत ज्ञानेश्वर तक इस सम्प्रदाय को व्यवस्थित सुसंगठित तथा प्रतिष्ठित करने का श्रेय सर्वप्रथम श्री ज्ञानेश्वर जी को दिया जाता है कृष्ण भक्ति के प्राचार्य ज्ञानेश्वर जी ने अपने ज्येष्ठ भाई एवं गुरु निवृत्तिनाथ, छोटे भाई सोपानदेव तथा बहन मुक्ताबाई के सहयोग से यह महान् कार्य किया। जिस कारण आज भी महाराष्ट्र में अद्वैतवाद के साथ (विट्ठल) भक्ति का मनोरम सामंजस्य भी दिखाई पड़ता है।

2. संत ज्ञानेश्वर एवं संत नामदेव से यानी सन् 1270 से 1550 तक इस नामदेव युग को महाराष्ट्र के भागवत धर्म वारकरी सम्प्रदाय के इतिहास का स्वर्ण युग मानना होगा। नामदेव ज्ञानेश्वर जी के समकालीन थे। अपनी भक्ति भावना के कारण वे महाराष्ट्र के बाहर भी पर्याप्त रूप से विख्यात हुए। सगुण भक्ति के साथ निर्गुण भक्ति के आद्य प्रवर्तक होने का श्रेय भी नामदेव जी को ही दिया जाता है। नामदेव के अभंगों ने मराठी जनता में भक्ति तथा ज्ञान का प्रचार किया इन अभंगों में दंभ तथा धार्मिक आडंबरों का कट्टर विरोध है। इसके पदों में हृदय की शुद्धता, दीनता, आत्मसमर्पण की भावना भली भांति प्रकट होती है। इन्होंने भक्ति के साम्राज्य में जाति-पांति का कोई बन्धन नहीं माना। इस युग में समस्त प्रदेश उदात्त भक्ति की भावना से ओतप्रोत हो रहा था। सम्प्रदाय में केवल ब्राह्मण ही नहीं, बल्कि धेड़ जाति तक के संत हुए। केवल पुरुषों को ही नहीं, स्त्रियों को भी भक्ति का समान अधिकार मिला। संत ज्ञानेश्वर, गोरा कुम्हार सांवाला माली, नरहरि सुनार, चोरवामेना धेड़, जनाबाई, कान्होपात्रा (वेश्या) आदि संतों का अभ्युदय हुआ।

वारकरी मत के चार उप-सम्प्रदाय हैं : 1. चैतन्य, 2. स्वरूप, 3. आनन्द तथा 4. प्रकाश।

1. चैतन्य सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के दो भेद हैं। पहले में 'रामकृष्ण दृष्टि 6 अक्षरों का मंत्र मान्य है तथा दूसरे में 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह द्वादश अक्षरी मन्त्र मान्य है। निलोबा के मतानुसार चैतन्य मत के आदि प्रवर्तक महाविष्णु हैं जिन्होंने हंस रूप धारण करने वाले ब्रह्मा को चतुश्लोकी भागवत का उपदेश दिया था। ब्रह्मा ने नारद को इस मत में दीक्षित किया। उनके शिष्य हुए केशव चैतन्य। आगे चलकर इस चैतन्य मत की शाखा को तुकाराम जी ने लोकप्रिय तथा व्यापक बनाया। चैतन्य मत के दूसरे उप-सम्प्रदाय की गुरु परम्परा इस प्रकार है—आदिनाथ, मच्छेन्द्रनाथ, गोरखनाथ, गहिणीनाथ, निबृत्तिनाथ, ज्ञानेश्वर।

2. स्वरूप सम्प्रदाय—'श्रीराम जयराम जय जय राम' इस सम्प्रदाय का मान्यतः त्रयोदशाक्षर मंत्र है। इसमें भी दो उप-सम्प्रदाय हैं।

(1) रामानुजी जो माथे पर लाल रंग का तिलक लगाते हैं।

(2) रामानंदी जो माथे पर सफेद रंग का तिलक लगाते हैं। महाराष्ट्र के रामदासी पंथ के लोगों का समावेश इसी द्वितीय रामानंदी मत के अन्तर्गत है।

3. आनन्द सम्प्रदाय—इसका मूल मंत्र है राम अथवा श्रीराम। इसके अन्तर्गत नारद, वाल्मीकि, रामानन्द, कबीर, सेनानाई, आदि भक्त माने जाते हैं।

4. प्रकाश सम्प्रदाय—इसका मंत्र है 'नमो नारायण'। इस सम्प्रदाय के अनुसार इसका मूल पुरुष निर्गुण ब्रह्मा से उत्पन्न होने वाला नारायण ही है। उसके बाद की शिष्य परम्परा इस प्रकार है : आदिनारायण, ब्रह्मा, अत्रि, दत्तात्रेय, सहस्रार्जुन, यदु, जनार्दन, एकनाथ।

श्रीमद्भागवत की परम्परा—इसकी उत्पत्ति भागवत के उपदेशों से होने के कारण वारकरी मत भागवत धर्म कहलाता है। प्राणिमात्र में भगवान का देखना भागवत धर्म है

वारकरी सम्प्रदाय के आचार्यों ने भगवत्प्राप्ति का सरल उपाय सगुण रूप की भक्ति बताया है। उन्होंने भक्ति के नाना प्रकारों में नामस्मरण तथा कीर्तन को सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावशील बताया है। संत तुकाराम जी कहते हैं 'बीज आणि फल हरिचे ते नाम' अर्थात् हरि का नाम ही बीज और हरि का नाम ही फल है। साधन और साध्य दोनों हरि का नाम है। ज्ञानेश्वर कहते हैं, 'जे जे भेटे भूत। तें तें मानिजे भगवत।'।

सगुण और निर्गुण उपासना का समन्वय—इस पंथ को भगवान के दोनों रूप सगुण तथा निर्गुण मान्य हैं। पूर्ण सगुणोपासक होने पर यह परमात्मा को व्यापक एवं निर्गुण निराकार भी मानता है। इस निराकार ब्रह्म की प्राप्ति का साधन सगुणोपासना, नामस्मरण तथा भजन है। वारकरी संतों ने ज्ञान तथा भक्ति के समन्वय का विशेष आग्रह रखा है। संत एकनाथ जी ने भक्ति तथा ज्ञान के परस्पर संबंध को बड़े ही रोचक उदाहरणों से प्रकट किया है। वे भक्ति को मूल ज्ञान को फल तथा वैराग्य को फूल बतलाते हैं। बिना मूल के फल उत्पन्न नहीं हो सकता और बिना मूल के फूल असंभव है, इसी प्रकार बिना भक्ति और वैराग्य के ज्ञान का उदय नहीं हो सकता। भक्ति के उदर से ही ज्ञान उत्पन्न होता है। भक्ति ने ही ज्ञान को उसका गौरव प्रदान किया है। भगवान के प्रति पूर्ण अनुराग के साथ उसके नाम का कीर्तन तथा भजन करना ही भक्ति का मुख्य साधन है।

यह पंथ पूर्णतया वैदिक है। भक्ति के नौ प्रकार पंथ को मान्य हैं। परन्तु उन सब में नामस्मरण तथा कीर्तन को अधिक महत्व दिया गया है। विट्ठल नाम का उच्चारण कंठ में तुलसीमाला, एकादशी का व्रत ये तीन इस पंथ के मान्य सिद्धान्त हैं। एकादशी का व्रत रखकर भगवान का स्मरण तथा कीर्तन करने का विधान प्रत्येक वारकरी को है। वारकरी सम्प्रदाय में गृहस्थाश्रम छोड़ देने का आदेश नहीं। वारकरी अपने वर्ग और आश्रम के अनुरूप कार्य करते समय नामस्मरण करते हैं। वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था भक्ति में बाधक नहीं हैं। भक्ति में वर्ण तथा जाति की ऊँच-नीच का महत्व नहीं। आचरण की शुद्धि पर अत्यधिक जोर है। सत्य भाषण, पर स्त्री मां बहन के समान, परधन की इच्छा न करना, मद्यपान से दूर रहना, परोपकार में रत रहना और मृदु भाषण करना आवश्यक माना गया है। वारकरी सम्प्रदाय अद्वैतवादी होते हुए भी भक्ति प्रधान है। वेदान्त से सच्ची भक्ति का स्रोत झरता है। अद्वैतानुभूति की सबसे ऊँची चोटी है। भगवान प्रेम स्वरूप है और प्रेम ही जगत और मानव जीवन का आधार है। परमात्मा व्यापक निर्गुण और निराकार होते हुए भी सगुण (साकार) रूप धारण करता है—ऐसा पंथ का दृढ़ विश्वास है। इस पंथ में साधारण मनुष्यों के लिए सगुण पूजा या भक्ति कही गई है और सिद्धों के लिए निर्गुण भक्ति बताई गई है।

वारकरी सम्प्रदाय का कार्य तीन भागों में विभाजित किया गया है :—1. सामाजिक, 2. धार्मिक एवं 3. साहित्यिक। सामाजिक कार्य के विषय में वारकरी सम्प्रदाय ने वैदिक परम्परा को कुछ सुधारों के साथ दृढ़ किया है। वारकरी सम्प्रदाय के संतों ने अपने उदाहरणों से यह सिद्ध कर दिया कि गृहस्थी में रहते हुए भी पवित्र आचरण एवं भक्ति के बल पर परमात्मा की प्राप्ति हो सकती है। गृहस्थाश्रम को अधिक महत्व देने के कारण मानव जीवन सुखमय बना और स्त्रियों का दर्जा बढ़ा। योग साधना, अनुष्ठान, ज्ञानार्जन आदि साधनों का महत्व कम करके नाम संकीर्तन जैसे सर्व सुलभ साधन का महत्व बढ़ाया। दीन हीन जाति के

दुबल हिन्दुओं का संगठन करके उनमें ईश्वर, धर्म, भाषा, संस्कृति इत्यादि के प्रति निष्ठा पैदा करने का महान् कार्य वारकरी सम्प्रदाय ने किया। व्यक्ति की श्रेष्ठता उस के सदाचरण पर निर्भर होती है, न कि उसकी जाति पर। इस सिद्धान्त को वारकरी पंथ ने व्यावहारिक रूप दिया।

वारकरी सम्प्रदाय ने अतमोल साहित्य की रचना करके मराठी वाङ्मय की वृद्धि की। यह साहित्य केवल सामयिक नहीं बल्कि मानव जीवन के नित्य, नैतिक धार्मिक और सामयिक मूल्यों से ओतप्रोत रहा। उस समय साधारण जनता धर्म के प्रति उदासीन थी। उच्चवर्ग के लोक साहित्य रचना संस्कृत में करके जन भाषा को तुच्छ समझते थे। वारकरी सम्प्रदाय ने इस रूढ़ि को तोड़कर बहुजन के लाभ, समाज के हित की दृष्टि से ओधी, अभंग, पद इत्यादि छंदों में मराठी तथा हिन्दी भाषा में प्रचुर रचना की। तत्काल ही यह साहित्य लोकप्रिय बना। जनता में काव्य के प्रति रुचि उत्पन्न हुई। संत काव्य महाराष्ट्र में जनता के कंठ में गूँजने लगा। सामाजिक उन्नति के साथ आत्मिक उन्नति करना भी इस काव्य का परम ध्येय था। इस संत साहित्य ने परमार्थ विषयक, भ्रामक कल्पना, रूढ़ि और अत्याचारों की कड़ी आलोचना करके शुद्ध सरल भक्ति का मार्ग जनसामान्य को बताया। यह संत साहित्य जितना व्यापक, शुद्ध और समृद्ध है, उतना ही रस भीना भी। इस प्रकार महाराष्ट्र का यह वारकरी वैष्णव सम्प्रदाय नितान्त लोकसंग्रही और लोकोपकारी है।

नामदेव कालीन संत मण्डली में संत ज्ञानेश्वर, निवृत्तिनाथ, सोपानदेव, मुक्ताबाई, गोरकुंभार, जोगापरमानन्द, नरहरि सुनार, राकाकुंभार, परिसा भागवत, विसोबाखेचर, जगमित्रनागा, जनाबाई, चोखामेला, सेनानाई, बंका घेड़ सोयराबाई, सावतामाली, चांगदेव, सच्चिदानन्द बाबा आदि स्त्री, पुरुष, ब्राह्मण, अब्राह्मण, अछूत, योगी, तत्त्वज्ञानी, अनपढ़ सभी लोग थे। ये सब जाति-कुल के झूठे अभिमान से बिल्कुल दूर थे। इनके समक्ष भक्ति के अतिरिक्त अन्य सब तुच्छ था। संत ज्ञानेश्वर तथा उनके भाई वहन के अलावा शेष सभी संत गृहस्थाश्रमी थे। इन्होंने अपने गृहस्थ जीवन को परमार्थनिष्ठ बनाया था। ये अपनी-अपनी जाति के अनुसार व्यवसाय भी करते थे। भक्ति में मस्त होकर अभंगों की रचना भी करते थे। इन संतों का आपस में इतना प्रेम था कि एक संत दूसरे संत की रचना जनता के सम्मुख अपने कीर्तन में गाता था। संत ज्ञानेश्वर ने यह सगुण-निर्गुण भक्ति का बीज बोया था और उसे अंकुरित होते हुए भी देखा था। आगे चलकर यह विशाल वृक्ष बना, खूब फला फूला। आज इसकी छाया तले सारा महाराष्ट्र विश्रान्ति पा रहा है। इसी वृक्ष का नाम है भागवताचार्य प्रणीत वारकरी पंथ।

संत ज्ञानदेव के महाप्रयाण के बाद नामदेव पंढरपुर छोड़ पंजाब चले गए जिस समय उनकी आयु 55-56 वर्ष की थी। उन्होंने पंढरपुर से चलकर पहले मारवाड़ की यात्रा की, तत्पश्चात् द्वारिका फिर गोकुल, मथुरा, वृंदावन होते हुए हरिद्वार भी गए। हरिद्वार से वे पंजाब की ओर मुड़े। उन्होंने सबसे पहले अमृतसर के 'भूतपिण्ड' गांव में अपना डेरा डाला। कुछ दिनों तक वहां रहने के बाद वे गरुड़ गांव में गए, जो गुरुदासपुर जिले में है। गरुड़ गांव में कुछ दिनों तक रहने के बाद नामदेव धूमते-धूमते भट्टीवाँल गांव में पहुंचे और एक तालाब के किनारे अपना डेरा डाला, जिसे आज भी लोग नामियाना तालाब कहते हैं। और फिर घुमान गांव में आकर रहने लगे। उत्तर भारत में नामदेव जी के बहुत से शिष्य हुए यथा : केशवकलाधारी, बहोरदास, जल्लो, लद्धा, विष्णुस्वामी आदि। इनमें से जल्लो का पंढरपुर आने

के बारे में उल्लेख मिलता है। त्रिलोचन नाम का उनका शिष्य हरिद्वार के पास का रहने वाला था और उत्तर भारत में ही इसके साथ भी इनकी भेंट हुई थी। यह सभी शिष्य प्रायः उनके निवास स्थान पर एकत्र होते थे और भजन कीर्तन किया करते थे। महाराष्ट्र में नामदेव के प्रधान शिष्यों में जनाबाई, परिसा भागवत एवं चोखामेला का नाम विशेष रूप से लिया जाता था। इनमें भी जनाबाई बाल्यावस्था से ही नामदेव जी के परिवार की परिचारिका का कार्य करती थी। इन सभी शिष्यों ने नामदेव के रास्ते पर चलकर भक्ति का प्रचार किया।

नामदेव के जीवनकाल में ही उनकी ख्याति दक्षिण से उत्तर तक फैल चुकी थी। उन्होंने महाराष्ट्र में जनजागृति के लिए मराठी को स्वीकार किया तथा उत्तर भारत की जनता के लिए हिन्दी के माध्यम को अपनाया। सन्त नामदेव जी ने उत्तर भारत में प्रवेश कर वहाँ की जनता को बहुदेवोपासना, कृत्रिम आचार-विचार, जाति भेद आदि के प्रति सजग किया। पुराने रूढ़िवाद की जंजीरों से जकड़े हुए समाज को नया प्रकाश दिखाया। धार्मिक आचार-विचार के नाम पर सत्य और नैतिकता छोड़ने वालों को जागृत किया। पंडित पुजारी तथा भोले-भाले हिन्दुओं को भी सच्चा मार्ग दिखाया।

संत नामदेव के समय सम्पूर्ण भारत में वर्ण व्यवस्था के आधार पर जातीयता की जड़ें बहुत ही मजबूत हो चुकी थीं। लोग जाति-पांति की जंजीरों में जकड़े हुए थे। वर्णव्यवस्था के नाम पर रूढ़ियों का कठोर पालन हो रहा था। इस आग की आंच नामदेव को भी लगी थी। संकीर्तन में मस्त नामदेव को ओढ़ानागनाथ के पुजारियों ने मन्दिर से बाहर निकाल दिया था। इस भेदभाव को समाप्त करने के लिए नामदेव जी ने सबसे पहले कदम उठाया। हरिजन कन्या संत जनाबाई आजीवन नामदेव के परिवार में दासी का काम करती रही। संत चोखामेला, जो जाति से घेड़ थे, नामदेव जी के महाराष्ट्र के प्रधान शिष्य थे। इसी विचार धारा को आगे चलकर उत्तर भारत के प्रमुख सन्त कबीर, रामानन्द, रैदास, दादू, नानक आदि ने स्वीकार किया। नामदेव जी जाति-पांति को कुछ भी महत्त्व नहीं देते थे। नामदेव के पश्चात् उत्तर भारत में उनका विशाल वारकरी सम्प्रदाय केवल एक जाति विष्णुस्वामी सम्प्रदाय में ही सिमट गया। महाराष्ट्र की भांति वह जनसामान्य की सम्पत्ति न बन सका। परन्तु नामदेव जी जीवन भर जाति-पांति के विरुद्ध प्रचार करते रहे। वे कहते थे—

“कहा करऊ जाति, कहा करऊ पाती। राम का नाम जपऊ दिनराती ॥”

नामदेव का दृढ़ विश्वास था कि मन्दिर या मस्जिद की चार दीवारों में ईश्वर अल्ला का अस्तित्व नहीं। वह तो घट-घट वासी है। वे कहते थे कि रूढ़िवादी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही गलत रास्ते पर जा रहे हैं। इसीलिए वे पुरानी जीर्ण रूढ़ियों के विरोध में लड़ रहे थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों में धार्मिक और सामाजिक कट्टरता दिखाई देती थी। अतएव उन्होंने दोनों को छेड़ने की चेष्टा की—

“पांडे तुमरी गाइत्री लोघे का खेत खाती थी ॥

लैकरि ठेंगा टगरी तोरी लांगत लांगत जाती थी ॥

पांडे तुमरा महादेऊ धऊले बलद चढ़िआ आवत देखिआ था ॥

मोदी के घर खाना पाका बाका लड़का मारिआ था ॥

पाँडे तू मरा रामचंदु सो भी आवतु देखिआ था ॥
 रावन सेती सरवर होइ घर की जोई गवाई थी ।
 हिंदू अना तुरकू काणा दाहां ते गियानी सियाना ॥
 हिंदू पूज देहुरा मुसलमान मसीत ।
 नामे सोई सेविआ जउ देहुरा न मसीत ॥”

रूढ़िवाद की जंजीरों से जकड़े हुए समाज को नामदेव ने नया प्रकाश दिखाया । अंध श्रद्धा के कारण मिथ्या धार्मिक आचार-विचार के नाम पर सत्य और नैतिकता को छोड़ने वाले मुसलमानों को जागृत किया । भोले भाले हिन्दुओं को भी सच्चा मार्ग दिखाया । संत होने के कारण ही उन्होंने सभी को समान रूप से उपदेश किया । चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान, चाहे वस्त्र रंगने वाला हो, चाहे सिलाई करने वाला —

रांगनि रांग उ सीवनी सिवउ । राम नाम विन घड़ी न जीवउ ॥
 भगति करत हरिके गुन गावउ । आठ प्रहर अपना खसम धिआवउ ॥

संत नामदेव जी उच्चकोटि के कवि थे । वे सच्चे कर्मयोगी के रूप में संसार में रहे । वे संसार से अलिप्त थे । उन्हें न किसी से मोह था और न किसी से द्वेष । वे सच्चे संत थे तथा करनी और कथनी का अन्तर उन्होंने अपने आचरण में आने नहीं दिया । श्री नामदेव जी ने महान् धर्म प्रचारक की भूमिका निभाई । उनके जीवन का उद्देश्य, देश और समाज में धर्म के नाम पर प्रचलित रूढ़ियों को समाप्त करना था । भारत के कोने-कोने में घूमकर उन्होंने अन्त विचारधाराओं से सम्पर्क स्थापित किया । उन्होंने अपनी प्रखर बुद्धि एवं तात्त्विक त्रिचारधारा से समाज में व्याप्त दोनों पर कटुसत्य प्रहार किया और वारकरी पंथ के नाम से तवीन पंथ का सूत्रपात किया । महाराष्ट्र एवं उसके पड़ोसी प्रांतों की जनता का यह पंथ आज भी श्रद्धापात्र है ।

संत नामदेव की भाषा जनता की भाषा थी । वे मराठी और हिन्दी में समान भाव से पद रचना करने में समर्थ थे । जहां उनकी मराठी अभंगवाणी अत्यन्त भावपूर्ण है वहीं हिन्दी काव्य भी सरस, सुन्दर और भावपूर्ण है । मराठी में लगभग तीन हजार अभंग पाए जाते हैं और उनकी उपलब्ध हिन्दी वाणी तीन सौ के करीब पाई जाती है । इनमें कुछ साखियां भी हैं । इन पदों में से 61 सिखों के ग्रंथसाहिब में समाविष्ट होने के कारण चिरस्थायी हो गये हैं । नामदेव की मातृभाषा मराठी होने के कारण उनके हिन्दी पदों पर मराठी का प्रभाव पाया जाता है । उनके साहित्य में खड़ी बोली के साथ ब्रज भाषा, पूर्वी हिन्दी तथा पंजाबी का भी समावेश हो गया है । अरबी फारसी के शब्द भी उनकी भाषा में समा गए हैं । मराठी अभंगों की तरह नामदेव की हिन्दी वाणी भी रस पूर्ण है ।

श्री नामदेव गाथा में ऐसा उल्लेख है कि श्री नामदेवजी ने सौ करोड़ पदों की रचना करने की प्रतिज्ञा की थी । कहते हैं नामदेव जी व उनके परिवार के सदस्यों ने 96 करोड़ पदों की रचना की थी । मराठी भाषा में उपलब्ध पद के संकलन नामदेव गाथा नाम से वारकरी पंथ के महात्माओं तथा अन्य महानुभावों ने प्रकाशित किये हैं । नामदेव की हिन्दी पदावली भगवान् के सगुण और निर्गुण रूप का परिचय देने वाली है । और इसी वाणी द्वारा संत नामदेव जी ने उत्तर-भारत में नये विचारों की क्रान्तिकारी चिंगारी प्रज्वलित की ।

हिन्दी साहित्य की दृष्टि से खड़ी बोली के पदों को राग-रागिनी की शैली प्रदान की । संत नामदेव अपने समय के निर्गुण भक्ति के प्रथम संत तथा महाराष्ट्र के वारकरी मत के प्रथम प्रचारक और हिन्दी की गीत शैली के प्रथम गायक कहे जा सकते हैं ।

संत नामदेव जी कुछ वर्ष उत्तर-भारत में रहकर वारकरी सम्प्रदाय के तत्त्वों का प्रचार और प्रसार कर शरीर थकने तथा अधिक उम्र हो जाने के कारण विट्ठल भगवान के चरणों में रहने की इच्छा से पंढरपुर वापिस आ गये तथा 3 जुलाई 1350 ई० में श्री विट्ठल के मन्दिर के द्वार के बाहर की प्रथम सीढ़ी पर समाधि ले ली । आज भी पंढरपुर के श्री विट्ठल के मन्दिर के द्वार के बाहर नामदेव का समाधि स्थल है, आने वाले दर्शनार्थी वन्दना करते हैं और उस समाधि वाली प्रथम सीढ़ी पर पांव रखे बिना ही मन्दिर में जाते हैं । उस सीढ़ी को 'श्री नामदेव जी की पायरी' कहा जाता है ।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि संत नामदेव जी का जन्म महाराष्ट्र में हुआ लेकिन उनके विचारों का प्रभाव सम्पूर्ण देश में पाया जाता है । उन्होंने उत्तर भारत और दक्षिण भारत का समन्वय करने की दृष्टि से उत्तर भारत की चार बार यात्रा की थी । क्योंकि संत नामदेव जी अपने काल के प्रचलित रूढ़िवाद से मुक्त थे । प्राणिमात्र के प्रति समभाव, सदाचार, सहिष्णुता, ईश्वराराधना के भिन्न मार्गों के प्रति समादर जैसे उच्च नैतिक मूल्यों का जो मानदण्ड उन्होंने स्थापित किया वह सदा ही किसी भी आदर्श समाज के लिए अनुकरणीय रहेगा ।

संत नामदेव जी के विचारों का व्यापक प्रभाव हुआ और कबीर, नानक, रैदास, गरीबदास आदि संतों ने उन्हीं की परम्परा को आगे चलाते हुए ऊँच-नीच समाप्त करने और जाति भेद को मिटाने के उद्देश्य से लोकशिक्षण का कार्य किया ।

संत नामदेव जी की ईश्वराराधना केवल अपने लिए ही नहीं थी । भक्ति भावना से प्रेरित काव्य के द्वारा उन्होंने निरर्थक रूढ़ियों को तोड़ने के लिए जनशिक्षण का कार्य किया । जातिपांति में विश्वास न करने का, हिन्दू-मुस्लिम भेदभाव को व्यर्थ मानने का संदेश उन्होंने जनता को दिया । 'कहा करी जाति कहां करी पांति, हरी का नाम जपौ दिन राति' का उनका सन्देश या हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य को धिक्कारने वाले उनके पद—'हिन्दू पूजे देहुरा मुसलमान मसीत, नामें सोई सेविया जउ देहुरा ना मसीत' हमारे लिए आज भी अलग महत्त्व रखते हैं । □

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं

इनमें सम्पादकीय सहमति अनिवार्य नहीं ।

इतिहास नदियों का

और बहता रहा चिनाब.....

□ सागर पंडित

कहते हैं, कि चिनाब की रेती से इश्क की खुशबू आती है, और यह है भी सच। इस नदी के किनारे, कई अमर प्रेम गाथाओं ने जन्म लिया, परवान चढ़ीं और प्रसिद्ध हुईं।

अपनी हीर को मिलने की उतावली में रांझा अपनी जान की परवाह किए बिना तैर कर पार करने के लिए उद्धित हो गया। लोगों ने उसे इस चढ़ी हुई नदी में ठिलने से बहुतेरा मना किया परन्तु चिनाब की लहरों संग डूबता उतराता रांझा अपने साथ 'हीर-रांझा' के कृतिकार वारिश् शाह को भी अमर कर गया। वारिश् शाह की अमर गाथा "हीर रांझा" में इस का वर्णन यों हुआ है :—

“रांझा रहे न बरजया किसे हीले,

विच नदी दे जाके पैर पाये।

लोक आख रहे मियां ठिल नाहि,

तेरी जान जावे जीवे सैर जाये ॥”

सोहनी इसी नदी में अपने महिवाल से मिलने के लिए कच्चे घड़े परठिल निकली थी और फिर,

सोहनी विच चनां दे डोब चलेओं,

मच्छ कच्छ संसार दे खावने नूं।

डोब सोहनी नूं केहड़ी बल वह से,

जा दस के जा टिकानेबां नूं ॥

उधर महिवाल को यह समाचार मिला

तेरी सोहनी विच चनां डुबी,

पया मौत दा लख सवार मियां।

महिवाल भला सोहनी के बिना कैसे रहता, उसने भी इसी चिनाव में छलांग लगाकर अपनी जान दे दी ।

महिवाल मारे विच छाल नेह दे,
मुंहो आख के मैं कुर्बान बेली ।

गल लग मिले वृझी अग्न दिल दी,
महीवाल दिती ईवें जान बेली ॥

वास्तव में यह नदी ही इशक बरपा देने वाली नदी है । इसका जन्म ही इशक के कारण हुआ । कहते हैं इन्द्र की सभा की नर्तकी चन्द्रा का प्रेम स्वर्ग के देव भागा से हो गया । इन्द्र देव को यह प्रेम प्रसंग स्वीकार नहीं था । उन्होंने शापित कर दोनों को हिमालय के एक निर्जन मे स्वर्ग से गिरा दिया । पर्वत शिखा के एक ओर से नदी में परिवर्तित द्रवित चन्द्रा वह निकली अपने प्रेमी की खोज में और दूसरी ओर से उसी रूप में विरह में तड़प भागा भाग निकला । दोनों आ मिलें तांडी में । एक दूसरे का आलिंगन कर दूर तक अपना अपना अस्तित्व लिए बहते रहे और फिर एक दूसरे में विलीन अस्तित्वहीन नया नाम चिनाव लिये वह चले । वाराह पुराण में इस नदी को चन्द्रा-भागा के नाम से जाना गया है, परन्तु इसका वैदिक नाम अस्कनी है । जिसका अपभ्रंश ही शायद आशंकी है । इसी संगम स्थल तांडी पर एक और प्रेम गाथा घटित हुई जिसे आज तक हिमाचल के लोक गीतों में गाया जाता है ।

तांडी मनाली से 105 किलो मीटर के लगभग और लाहौल-स्पीति जिला मुख्यालय केलांग से लगभग आठ किलोमीटर पर स्थित है । यह स्थान विश्व की सबसे अधिक ऊंचाई वाले मनाली लेह राजमार्ग पर है । इसी स्थान पर शान्त चन्द्रा और नट-खट भागा का मिलन होता है । तांडी में गुरुवृंताल का प्रसिद्ध प्राचीन गुम्पा (बौद्ध मन्दिर) है, यहाँ हर वर्ष यात्रा होती है तथा लोग दूर-दूर से आकर पूजा करते हैं । इसी एक यात्रा के दौरान भरमौर निवासी भूंकू गद्दी सुन्नी भोटली नामक लाहौली लड़की का प्रेम हुआ था । सावन और भादों के महीनों में जब गद्दियों के देश भरमौर में वर्षा का जोर अधिक होता है वे भेड़-बकरियों को लेकर लाहौल की चरागाहों में चले जाते हैं, क्योंकि इन दिनों लाहौल में वर्षा बिल्कुल नहीं होती और घास भरपूर होती है । लगभग चार माह ये लोग लाहौल में रह कर वापिस भरमौर चले जाते हैं ।

एक वर्ष इसी प्रकार भूंकू अपने भेड़ों के झुंड के साथ लाहौल आया और चरागाह तक जाते-जाते तांडी के मेले में उसकी भेंट सुन्नी से हुई । प्रथम मिलन के इस प्रेम ने दोनों को दीवाना बना दिया । भूंकू अपनी भेड़-बकरियों को भूल गया और प्रेम दीवाना सुन्नी के साथ ही रहने लगा । समय जाने कैसे बीत गया, दोनों को पता ही नहीं चला । वापिस भरमौर लौटने का समय आ गया तो भूंकू के रिश्तेदार उसे ले जाने सुन्नी के गांव पहुंचे । भूंकू के जाने से इन्कार कर देने पर उसे तशे की हालत में वलात् उठाकर ले गये । बर्फ पड़ गई और रास्ते बन्द हो गए । भूंकू और सुन्नी के बीच बर्फ से लदकर मौत का सन्देश लिये पीर पंचाल पहाड़ खड़ा हो गया । इस ओर भूंकू उस ओर सुन्नी विरह में तड़पते रहे । अगले वर्ष गद्दियों का आना शुरू हुआ तो सुन्नी हर गद्दी से पूछती मेरा भूंकू नहीं आया वह ठीक ठाक तो है न ? लोगों ने तंग आ कर झूठ ही कह दिया कि—

“होर तां माणुआ राजी बाजी

भूंकू गद्दी मुआ हो ।

बात ठीक नहीं थी परन्तु सुन्नी पर वज्रपात हो गया वह बेहोश हो गई । उसने मरते-मरते पूछा :—

“कसका वियोगे मुआ भूंकू

कसके दुःखे मुआ हो”

उसे कह दिया गया कि तेरे वियोग में मर गया है । सुन्नी का दिल टूट गया चन्द्रा भागा संगम में कूदकर मर गई ।

उधर कुछ दिनों पश्चात् जब सुन्नी के गांव में भूंकू आया तो उसने गांव वाले से पूछा :—

“दिया ता दिया मुण्डुआ

मेरी सुन्नी दा विसेखा हो”

विसेखा क्या था सुन्नी तो रही नहीं थी बात सच्ची थी, सुन्नी के बिना भूंकू जीवित रह कर क्या करता, वह भी चिनाव नदी में कूद कर अपनी सुन्नी के पास जा पहुंचा । लोक कवि ने इस प्रेम गाथा का वर्णन बड़े ही मार्मिक ढंग से किया है । क्यों न हो इसके जल में इश्क, इसकी रेती में इश्क । जबकि इसका प्रादुर्भाव ही संगम से हुआ और इसी संगम पर सुन्नी भूंकू की इतनी बड़ी प्रेम गाथा बनी कि इस नदी का पानी जहां भी वह गया, इसकी रेती जहां-जहां पहुंची वहां-वहां इश्क ही बहाती चली गई ।

हिमाचल प्रदेश में अनेक छोटी बड़ी नदियां अपार जलनिधि को अपने में बहाए लिये जाती हैं । अनेक बेनाम नालों के मिलकर बहने से नद बनते हैं । जल के घनत्व के आधार पर हिमाचल में बहने वाली नदियों में चिनाव ही सबसे बड़ी नदी है । तांडी में चन्द्रा और भागा के मिलकर बहने से चिनाव नदी कहलाती है । हिमाचल में अपने उद्गम स्थान से कश्मीर की सीमा तक यह नदी लगभग 150 किलोमीटर बहती है । इसके एक ओर पीर पंचाल और दूसरी ओर विशाल हिमालय की श्वेत गगन-चुम्बी पर्वत श्रृंखलायें खड़ी हैं । जिन को लांघ पाना मानव के लिए बड़ा कठिन है । इसके जल की गति का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि इसके तल की ढलान का अनुपात 1 : 15 है । सतलुज में विलय तक इसके जल को लग-भग 1200 कि०मी० की यात्रा तय करनी होती है ।

चन्द्रा, चन्द्रताल से निकलकर तांडी संगम तक लगभग 150 कि०मी० की यात्रा करती है । चन्द्रताल, शायद अर्द्ध चन्द्र के आकार का होने के कारण ही इस झील का नाम ऐसा पड़ा । 4570 मीटर की ऊंचाई पर स्थित यह लगभग एक कि०मी० लम्बी तथा आधा कि०मी० चौड़ी है । पांच पांडव नामक पांच हिम प्रपात इसके जल स्रोत हैं । लाहौल की ओर से स्पिति घाटी को जाते हुए, लगभग 4200 मीटर की ऊंचाई पर कुन्जम दर्रा पड़ता है । दूर उत्तर की ओर झील स्थित है । स्थानीय लोग इसे अपनी भाषा में “सोचिकमा” कहते हैं । अर्थात् केवल यही सुन्दर झील । चन्द्रताल का जल

निर्मल, मोठा, और अति शीतल है। बहुत अधिक गहरी होने के कारण इसका जल गहरी नीले रंग लिए हुए है। सदियों में जब इस झील की ऊपरी सतह जमकर बर्फ हो जाती होगी तो आईस स्केटिंग का कितना बड़ा मैदान अपने आप बन जाता होगा, यह इस झील को देखकर ही अनुमान लगाया जा सकता है। पूर्ण चन्द्र के दिन इस झील की शोभा का वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता। इसी झील से पतली धारा के रूप में चन्द्रा का आरम्भ होता है। लगभग 10 किलो मीटर वातल नामक स्थान में इस पर पहला पुल बांधा गया है। यह लाहौल घाटी से स्पिति घाटी में जाने वाली सड़क का पुल है। यहीं से कुञ्जम दर्रे की चढ़ाई शुरू हो जाती है।

वातल से लगभग 50 कि०मी० कोकसर तक कोई आवादी नहीं है। केवल छोटा बड़ा और छतरू के विश्राम गृह हैं। कोकसर से मनाली, स्पिति घाटी के मुख्यालय काजा और लाहौल घाटी के मुख्यालय केलांग तक जाने के लिए बस योग्य मार्ग है। जिसमें पूरे बरस में केवल चार माह तक ही यातायात सम्भव है। शेष समय में यह मार्ग हिम प्रखंडों एवं हिम से अवरोध रहता है। कोकसर चन्द्रा पर पहला गांव और लाहौल घाटी का प्रवेश द्वार है। यहां पहुंच कर ही चन्द्रा को सभ्यता के दर्शन होते हैं और यहां तक पहुंचते-पहुंचते, चन्द्रा विशाल रूप धारण कर पूर्ण यौवना हो जाती है। चंचल अल्हड़ और नारीत्व से भरपूर मार्ग में अनेकों छोटे-बड़े नालों के अतिरिक्त हजारों वर्ष की आयु वाले बूढ़े शिघरी और समुन्द्री हिमखंड चन्द्रा को अपार जल राशि से माला-माल कर देते हैं।

कोकसर से निकल कर खेपन राजा के गांव सिस्सु और गोदंता होती हुई चन्द्रा तांडी संगम में पहुंचती है। जहां उसका मिलन भागा से होता है। जिसे वह सम्पूर्ण अपने में विलय कर चिनाव हो अपनी यात्रा जारी रखती है।

भागा नद की यात्रा बारालाचाला से लगभग 4800 मीटर की ऊंचाई पर स्थित सूरज ताल से आरम्भ होती है। अपने उदगम से दारचा गांव तक की यात्रा यह नद सुनसान बंजर में तय करता है। अनेकों छोटे-बड़े नदी-नालों और हिम खंडों एवं हिम प्रपातों की अपार जल राशि को अपने में समेटे, जिसपा, गेमूर और लाहौल स्पिति के जिला मुख्यालय केलांग होता हुआ लगभग 70 कि० मी० की यात्रा तय कर के तांडी में प्रियतमा चन्द्रा में समा जाने के लिए उमड़ता चला आता है बिल्कुल एक नवयुवक की तरह पुरुषत्व से परिपूर्ण तेज, तरार, शोख। तांडी गांव के बसाये जाने की भी अनेकों गाथायें हैं। कोई कहता है कि इसे राणा रामचन्द्र ने बसाया कोई कहता है इसका नाम टुंडी राक्षस के नाम से पड़ा जिसका राज्य कुल्लु से लाहौल तक फैला हुआ था। कुछ भी हो यह संगम किसी प्रकार गंगा यमुना के संगम से कम पवित्र नहीं है। इसी संगम स्थान पर एक ओर बौद्धमत का बड़ा और पुराना मठ 'गुह्यंताल गुम्पा' स्थित है और दूसरी ओर हिन्दू सभ्यता का विशाल गांव 'धोशाल' और लाहौल के लोग इस संगम स्थान को केवल चन्द्रा भागा का संगम ही नहीं मानते परन्तु इसे दो घाटियों, दो सभ्यताओं का संगम भी मानते हैं। यहीं से एक मार्ग लाहौलघाटी और दूसरा मार्ग पटन घाटी से होता हुआ पांगी किलार और किश्तवाड़ तक जाता है।

चिनाव नदी तांडी से थिरोट तक पटनघाटी में बहती है। थिरोट से आगे उदयपुर घाटी आरम्भ होती है। पटन और उदयपुर घाटियों में होती हुई चिनाव के किनारे-किनारे बस

योग्य सड़क है, जिसका विस्तार पांगी घाटी से होते हुए जम्मू कश्मीर के डोडा जिला में स्थित किश्तवाड़ तक किया जा रहा है। पांगी घाटी जिला चम्बा में पड़ती है। पांगी घाटी मुख्यालय किलार से चम्बा जाने के लिए लगभग 4400 मीटर ऊंचाई के सांच दर्रे को लांघना होता है जो अपने आप में एक कठिन और जोखिम भरा कार्य है। पांगी घाटी की सीमा लांघ कर चिनाब जम्मू कश्मीर में किश्तवाड़ के स्थान पर प्रवेश करती है और अखनूर तक बहने के बाद पाकिस्तान में प्रवेश कर जाती है। अपने में जेहलम और रावी नदियों को विलय करती हुई चन्द्रभागा से बना चिनाब सतलुज में विलीन हो जाती है। चन्द्रा भागा, सोनी, भीवकु, हीर, रांक्षा सोहनी महिवाल जैसी प्रसिद्ध प्रेमगाथाओं के साथ कितनी अज्ञात प्रेमगाथाओं का गान करती हुई अपने में जेहलम, रावी और सतलुज को विलय कर लेती है।

□

रचनकारों से निवेदन

- शीराजा में कला, संस्कृति एवं साहित्य से जुड़ी आप की मौलिक, अप्रकाशित रचनाओं का स्वागत है।
- हाशिया छोड़ कर स्पष्ट लिखी हुई या टंकित रचना भेजें। कार्बन कापी नहीं। रचना के अन्त में अपना नाम तथा पूरा पता अवश्य दें।
- समीक्षा के लिए कृति की कृपया दो प्रतियां भेजें।
- अनूदित रचनाओं के साथ मूल लेखक की अनुमति संलग्न करना अनिवार्य है।
- रचनाओं की स्वीकृति तथा नियमानुसार पारिश्रमिक यथासम्भव शीघ्र भेज दिया जाता है। इस विषय में किन्हीं अनिवार्य परिस्थितियों के कारण होने वाले विलम्ब के लिए अवांछित पत्र व्यवहार न करें।
- केवल वहीं रचनाएं लौटायी जा सकेंगी जिनके साथ टिकट लगा लिफाफा संलग्न होगा।

कश्मीरी अल्पना 'व्यूग'

□ पृथ्वीनाथ मधुप

शिशु के जन्म, यज्ञोपवीत संस्कार तथा व्याह-शादी के अवसर पर कश्मीरी पण्डित भूमि पर सूखे रंगों से एक विशेष प्रकार का चित्रांकन करते हैं। इस चित्रांकन को स्थानीय भाषा में 'व्यूग' कहते हैं। 'व्यूग' को लोक चित्रांकन (Folk-painting) में भूमि चित्रांकन (Floor painting) के अन्तर्गत रखा जा सकता है। 'व्यूग' बंगालियों की अल्पना, मराठियों एवं गुजरातियों की रंगोली तथा दक्षिण भारतीयों के कोलम के बहुत निकट है।

यज्ञोपवीत संस्कार तथा शादी-व्याह के अवसरों पर 'व्यूग' आंगन के किसी भाग में चित्रित किया जाता है। जहां यह चित्रित करना हो उस जगह को साफ करके भरी मिट्टी तथा गोबर को पानी में घोल कर लीपा जाता है। लेपन सूख जाने पर एक दो महिलाएं एक बड़ी थाली में सूखे रंग लेकर 'व्यूग' चित्रित करती हैं। 'व्यूग' एक वृत्ताकार चित्रांकन है। वृत्ताकार परिधि में फूल-पत्ते, पंछियों के आकार तथा विभिन्न अन्य आकार चित्रित किये जाते हैं। शादी के अवसर पर जो व्यूग चित्रित किया जाता है उसकी परिधि के अन्दर मिट्टी के दो प्लेटनुमा सकोरे, जिनमें क्रमशः धान और चावल होते हैं रखे जाते हैं।

महिलायें अपने से वरिष्ठ महिलाओं को 'व्यूग' चित्रित करते हुए देख कर ही इसे चित्रित करना सीखती हैं। इन्हें इसके लिए घर में या बाहर कोई प्रशिक्षण नहीं मिलता। इस चित्रांकन में जिन रंगों का प्रयोग होता था वे प्रकृति से ही आते थे और इनको व्यूग चित्रण के कई दिन पहले तैयार करके रखा जाता था : सफेद रंग के लिए चूना या चावल का आटा, हरे के लिए किसी वृक्ष के हरे पत्तों का चूर्ण, जिन्हें छाया में सुखाया गया होता

लाल रंग के लिए छाया में सुखाये गये लाल फूलों का चूर्ण या लाल ईंट का चूर्ण, सिन्दूर, पुंकेसर, पीले रंग के लिए हल्दी की गांठों का चूर्ण या छाया में सुखाये गये पीले फूलों का चूर्ण आदि प्रयोग में लाया जाता था। शादी-ब्याह और यज्ञोपवीत संस्कार के 'व्यूग' के लिए काले रंग का प्रयोग वर्जित होता है। केसर और सिन्दूर व्यूग चित्रांकन में प्रयोग होते थे, इसके प्रमाण में ब्याह सम्बन्धी एक लोकगीत के निम्न टुकड़े को देखा जा सकता है—

व्यूग ल्यूखूयो ग्वंगु तय स्यन्दुरै

यन्द्रान्जस कर नमस्कार ।

अर्थात्—(रे दूल्हे !) तुम्हारा 'व्यूग' हमने केसर और सिन्दूर से चित्रित किया। तुम देवराज इन्द्र को नमन करो ।

आजकल की पश्चिमी सभ्यता में रंगी जा रही एवं नौकरी पेशा महिला रंगों को घर में बनाने का झंझट नहीं लेती। ये बाजार से विभिन्न रंग मंगा कर काम चला लेती है। कुछ दशक पहले जहां 'व्यूग' देखने में कलात्मक एवं आकर्षक लगता था वहां आजकल इसमें न आकर्षण है और न ही कलात्मकता का पट। ऐसा इसलिए कि आज की व्यूग चित्रण करने वाली में अपनी कला एवं संस्कृति के प्रति आकर्षण एवं लगाव की बहुत कमी आ गई है। वह यह चित्रण सिर्फ रस्म अदायगी के तौर पर ही कर रही है। कहीं-कहीं वह इस चित्रांकन के प्रति इतनी उदासीन है कि वह यह काम स्वयं न करके किसी भी पुरुष से करवाती है। हां आधुनिक चमक-दमक व दिखावटी समय ने 'व्यूग' पर इतना प्रभाव डाला है कि इसमें चौंध पैदा करने के लिए कलावत्तू के छोटे-छोटे टुकड़े काट कर बिखेर दिये जाते हैं।

उपनयन संस्कार का होम सम्पन्न होने के पश्चात् वालक से ब्रह्मचारी का वेश उतरवा कर आधुनिक काट के कपड़े पहना दिये जाते हैं। वालक के ताऊ या चाचा से बालक के सिर पर पगड़ी बंधवाई जाती है। इसके पश्चात् एक सुसज्जित छाता बालक के सिर पर तान कर आंगन में बने 'व्यूग' पर कई रस्में पूरा होने तक खड़ा किया जाता है। रस्में पूरी होने पर बालक को एक लघु जलूस के साथ, जिसमें वालक के सभी सम्बन्धी तथा पारिवारिक मित्र आदि सम्मिलित होते हैं, नदी घाट पर सन्ध्योपासना के लिये लिवाया जाता है।

दूल्हा जब बारात लेकर ससुराल जाने को होता है तो उस समय घर के द्वार से निकलते ही उसे 'व्यूग' पर कुछ रस्में पूरी करने के लिए एक सुसज्जित छाते के नीचे खड़ा रहना पड़ता है। ससुराल पहुंचने पर भी उसे 'व्यूग' पर रस्में पूरी होने तक दुल्हन के साथ खड़ा रहना पड़ता है। फिर यही क्रम दुल्हन ले जाते समय ससुराल तथा घर में दुहराना पड़ता है।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि 'व्यूग' सिर्फ कोई सजावटी चित्रांकन या मात्र अल्पना ही नहीं, अपितु इसका महत्त्व उपनयन तथा विवाह संस्कारों के साथ जुड़ी कुछ रस्मों से होने के कारण भी है। इसकी भी बहुत सम्भावना है कि 'व्यूग' तंत्र व यंत्र से अवश्य जुड़ा रहा होगा। यंत्र विद्या में विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों का प्रयोग विभिन्न तरीकों

से विभिन्न प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। इसकी बहुत सम्भावना है कि विभिन्न फूल-पत्ते आदि, जो रंगों के स्थान पर प्रयोग किये जाते रहे हैं, उनके प्रयोग में लाने का यही कारण रहा हो। नवजात शिशु को आंगन या वालकनी आदि में भी सूर्य दर्शन कराया जा सकता था। पर इसे सूर्य दर्शन मकान के मुख्य द्वार से सटे चबूतरे (जिसे कश्मीरी में ब्रांद कहते हैं) पर ही क्यों कराया जाता रहा है? यह 'व्यूग' केवल चूने या चावल के आटे (सफेद रंग) से ही क्यों चित्रित किया जाता था? यह खोज का विषय है। सरसरी तौर से विचार करने पर ऐसा लगता है कि हर स्थान का अपना एक अलग वातावरण एवं प्रभाव होता है। तंत्र-यंत्र साधना में भी किसी विशेष उद्देश्य को पूरा करने के लिए विभिन्न स्थानों एवं विभिन्न समयों पर साधना या यंत्र लेखन का विधान है। व्यूग चित्रण मात्र सफेद रंग से इसलिये किया जाता रहा है क्योंकि सफेद रंग में प्रकाश के सातों रंग समाये हुए हैं। आयुर्विज्ञान के अनुसार गहरे रंग शिशु के स्वास्थ्य के लिए ठीक नहीं होते या शिशु पर अच्छा प्रभाव नहीं डालते। सूर्य दर्शन का उद्देश्य शिशु को रोगों से मुक्त रखना है। 'आरोग्य' भास्करात् इच्छेत के अनुसार सूर्य सभी रोगों का विनाश करने वाला है। मुझे लगता है कि सम्भवतः जिस 'व्यूग' पर शिशु को रखा जाता रहा है वह कहीं सूर्य यंत्र (जिसे यंत्र शास्त्र में कल्प वृक्ष-सा माना गया है) का कोई रूप न रहा हो।

'व्यूग तु छथुर' (व्यूग और छत्र) कश्मीरी पण्डित समाज में विवाह का पर्याय रहा है। बुजुर्ग विवाह योग्य तरुण या तरुणी को यों असीसते हैं—'गछचे' व्यूग तु छथुर वसुन—यानी प्रभु करें कि तुम्हारा व्याह हो जाये। लाड़ली बेटी को कुछ अधिक ही आशीर्वाद मिलता है—गछचे' व्यूग छथुर तु राजु प्वोथुर'—प्रभु करे तुम्हारा विवाह राजकुमार (सुन्दर सम्पन्न) लड़के से हो जाए।

उपनयन संस्कार का होम सम्पन्न होने पर जब लड़का नदी-घाट की ओर जाता है, तथा व्याह-शादी के समय जब दूल्हा बारात लेकर ससुराल की ओर जाता है तो घर की महिलाएं—मां, ताई, चाची, बुआ तथा मासी आदि—'व्यूग' पर विशेष लोकगीत गाती हुई नाचती हैं। इन लोक गीतों को 'वीर्यवचन याने व्यूग' पर गाये जाने वाले बोल कहते हैं। ये बोल गाते समय एक थाली में विभिन्न रंगों के फूलों की पंखुरियां ली जाती हैं और सभी महिलाएं इस थाली में से कुछ पंखुरियां अपने-अपने दायें हाथ में लेकर क्रम से 'व्यूग' पर नाचने वाली महिला के सिर पर अपने दायें हाथ को वृत्ताकार घुमा कर फूल की पंखुरियां पुनः थाली में डालती हैं। इस क्रिया के लिए जितनी महिलाएं एकत्रित हुई होती हैं वे, एक के बाद एक, सभी व्यूग पर नाचती हैं।

उपनयन संस्कार के 'वीर्य वचनों' का विषय प्रायः पुत्र की सुन्दरता का बखान, मां के शोभाय एवं प्रसन्नता का वर्णन, बुआओं तथा बेटियों आदि की मायके के प्रति लगाव तथा स्नेह की अभिव्यक्ति, तथा स्वर्ग सिधारे स्वजनों के स्मरण के साथ इस प्रसन्नता की घेला में उनके सम्मिलित न होने की की अभिव्यक्ति आदि होती है। उदाहरण के एक 'वीर्य वचनों' की पंक्तियां प्रस्तुत हैं—

(क) हुमु व्वोथुमतु वेगिखोतुम/तोचु व्वोथुम याख बल
सामुललन व्वो छि खोतुम/तोतु व्वोथुम याखबल.....

अर्थात्—होम सम्पन्न होने पर मेरा शुक (सरीखा जाया) 'व्यूग' पर खड़ा रहने के बाद नदी की ओर चल पड़ा। इसे मामा जी ने गोद में उठा लिया। होम सम्पन्न होने ...

(ख) नीलिस द्रमनस अमर्येतु वशुन/म्यं बालि राशुन प'पिथ आव
यलिजाव लालुसाऽवत्यलि क्वोर कशुनाम्य बलि ...

यानी हरी दूब पर अमृत की बरसात हुई। मुझ बाला की खेती पकने को हुई। जब मेरा लाल जन्मा तब खूब धन लुटाया ..

विवाह संस्कार के 'वीग्य वचनों' का विषय यज्ञोपवीत के वीग्य वचनों के विषय के अतिरिक्त दुल्हे की समुराल यात्रा तथा सलोनेपन का वर्णन, दुल्हे की मां, ताई, चाची आदि की प्रसन्नता का वर्णन आदि हैं। यथा—

(क) स्वनुदाव गन्डुम तु दिल ह्य गोम ताजय/ब्रोंठ-ब्रोंठ द्रोमय
साऽवु महाराजय/पतु-पतु व्वो'थसय ववु यन्द्राजय... ..

अर्थात्—(जब से) सोने की डोर बांध ली मेरा हृदय प्रफुल्लित हुआ : (बारात के) आगे-आगे मेरा लाल दुल्हा बनकर चल पड़ा और (उसके) पीछे-पीछे उसका इन्द्र सरीखा पिता।

(ख) लोहूर्य तोतु होहवरकुन छु वुडाऽनी/यि सोन राजि सालरह्यथ
छु पकाऽनी/पकान पकान म्वो' खतु छु वतन छकाऽनी—

यानी—लाहौरी शुक (सलौना दुल्हा) समुराल की ओर परवाज पर है। हमारा प्रिय पुत्र बारात लेकर चल रहा है चलते-चलते पथ पर मोती बिखेरता जा रहा है—

स्पष्ट है कि कश्मीरी हिन्दुओं के दो महत्वपूर्ण संस्कारों के साथ जुड़ा होने के कारण जहां 'व्यूग' भूमि चित्रांकन है और वहां कश्मीरी लोक संस्कृति का महत्वपूर्ण अंग भी।

□

साहित्य और चिन्तन का खुला मंच

श्रीराजा

आज ही मंगाइये और पढ़िये

चिन्तन

उज्जयिनी भावधारा

□ प्रद्युमन दास वैष्णव

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के 46वें अधिवेशन के सभापतित्व की आस'दी से बोलते हुए डॉ० शिवमंगल सिंह सुमन ने भाव विह्वल होकर कहा था—“जब मुझे उज्जयिनी में कुलपति के विरह का भार वहन करना पड़ा था तब ऐसा धर्म संकट आया था। और कहीं होता तो मैं भी गर्व से मस्तक ऊंचा कर चलने का दंभ करता, पर उज्जयिनी ने मुझे अपनी औकात का आभास करा दिया, क्योंकि वहीं विश्व का सबसे पुराना विश्व विद्यालय सांदीपनि आश्रम के नाम से विख्यात रह चुका है, जिसके प्रथम कुलपति महर्षि सांदीपनि और प्रथम स्नातक जगद्गुरु भगवान कृष्ण थे। तब कुलपति के सिंहासन पर तो महर्षि सांदीपनि विराजमान थे और सिंहासन की सीढ़ियों पर भगवान कृष्ण, फिर मैं कहां बैठता ? निदान जहां महर्षि सांदीपनि की पादुकाएं रखी थीं, उन्हीं के पार्श्व में बैठकर मैंने अपने कुलपतित्व को सार्थक कर लिया था।” यह था उस महाकाल की पौराणिक महानगरी का माहात्म्य जो आज भी वही सौरभ सुरभित हो अनुभूत होती है।

जड़ जगत में उदधि उत्थित वाष्प राशि बिंदु रूप में वर्षित होकर सिताचल से सेतु पर्यन्त समस्त विघ्नों पर उज्जयन करती हुई अपने अंश के अंशी में विलीन हो चरम आनन्द में हिलोरें लेती है। यह बिन्दु-सिन्धु मिलन है। ठीक इसी भांति उज्जयिनी भावधारा के संदर्भ में ही चेतन जगत् में जीवसत्ता को अपने अंशी शिवसत्ता में विलीन होना ही है। यह आत्मा-परमात्मा मिलन है, शाश्वत सत्य है, जो कि सतत् है। इस सत्य और सातत्य का ऋषि अर्चन (दर्शन) प्रस्तुत हुआ है—“भ्रातरो मनुजः सर्वे” सर्वत्र समस्त मनुष्य भाई-भाई हैं। परस्पर अभिन्न हैं। जैसे कि धारा में बिन्दु-बिन्दु मिलकर अभिन्न हैं। “वसुधैव कुटुंबकम्” विश्व विस्तृत वसुधा ही कुटुम्ब है। जैसे कि धारा ही अपने संदर्भ में बिंदुओं का

कुटुम्ब है। “स्वदेशो भुवन त्रयम्” तीनों भुवन (त्रिलोक) स्वर्ग, मर्त्य, पाताल हमारा स्वदेश हैं। शक्ति त्रैलोक्यवस्या-रिवलेश्वरी है।

उज्जयिनी-भावधाराभिभूत-मुनियों ने कहा—“शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रः” विश्व-वासियो सुनो तुम अमृतपुत्र हो, मृत्युजयी हो। “तमसो मा ज्योतिर्गमय” तम तुम्हारी दया विशेष है ज्योति तुम्हारी दिशा है। तुम तमोजयी हो। ज्योति में जाओ।” असस मा सदगमय” असत्य तुम्हारी दया विशेष है। सत्य तुम्हारी दिशा है। तुम असत्य जयी हो। सत्य में जाओ। “मृत्योर्त्मा अमृतं गमय” मृत्यु तुम्हारी। अमृत तुम्हारी दिशा है। तुम मृत्युजयी हो। अमृत में जाओ। “उत्तिष्ठत जागृत, वरान्निबोधत”, उठो, जागो और श्रेय बोध करो। उज्जयिनी भावधारा के संदर्भ में ही उक्त श्रेय को सुनो, मनन करो और इसी का निदिध्यासन (अभ्यास) करो। यह अभ्यास ही योग है। “अभ्यास योग कौन्तेय योगः कर्मसुकोशलम्” यह ऋषि अर्चन ही आज खोज का विषय है।

उज्जयिनी भावधारा के संदर्भ में ही विश्वभर की भरण शक्ति से साक्षात्कार होता है। ऋषि हृदय विश्वजनीन मानवीय ऐक्य भाव से भाव विभोर होकर सम्बोधित करता है --

“विश्वम्भर की भरण शक्ति तुम ऋतंभरा हो।
समाधिस्थ शिव, तब तुम उनकी चिदंबरा हो ॥
महाकाल की महाकालिका, दिगम्बरा हो।
परम पुरुष की शाश्वत संगति, स्वयम्बरा हो ॥”

महाकालिका का अभिषेक और महाकाल का अभिषेक विश्व में गर्व का विषय है यह आत्मज्ञान, सर्वज्ञान का परिमाण है। भववाधा-भंजन की कुंजी है। इसी आधार भूमि पर उज्जयिनी भावधारा के विचारशील लोगों की प्रतिष्ठा निर्विवाद रूप से बीते युगों में आचार-शील विश्व पर हो चुकी है। अभी होने जा रही है और आगे चलकर अवश्य होगी। आज के संदर्भ में समस्त संसार को तुमुल जयगान आंदोलित कर देगा।

“हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती ॥”

प्रबुद्ध शुद्ध भारती का यह संदर्भ “न अरैतिति आर्यः” जिनका कोई अरि (शत्रु) नहीं, आर्य बौद्धिकता का अज्ञात शत्रु व्यवहार दर्शन है तथा इसका रहस्य अध्यात्म है। उज्जयिनी भावधारा के संदर्भ में ही प्रत्येक युगावतार ने समग्र जीवन-संकट पर विजय पर विजय प्राप्त की है। नवम अवतार बुद्ध का मानव जगत् के लिए अत्यन्त हृदय वेधक और मर्मस्पर्शी रहा।

“निन्दसियज्ञ विधे-अहरह श्रुति जातम्।
सद्य हृदय दशितं पशु घातम्।
केशव धृत बुद्ध शरीर जय जगदीशहरे ॥”

वेदविहित यज्ञ विधान की अहरह (निरन्तर) निन्दा के निन्दक को यज्ञवलि (पशुघात) के परिप्रेक्ष्य में मनुष्य पक्ष में सदस्य हृदयता के कारण ही (बुद्ध) के नवम् अवतार गिना गया। जगत् के ईश, जगत् का दुःख हरण कर जय स्थिर रखें। जगदीश केशव का धृत

यह शरीर (कारुण्य मातृत्वते) युग का बुद्ध शरीर पर है। मानव जगत् ने बुद्ध को कष्टा-वतार माना। यह गणना क्रम यदि जीवित रहता, तो प्रभु योशु मसीह दशम् अवतार गिने जाते। उन्होंने पतितों के प्रति घृणा पर प्रेम के द्वारा जय प्राप्त की। इसी क्रम में मुहम्मद एकादश अवतार गिने जाते। उन्होंने बदकारों पर उसूल और अमल की पावनदियों के द्वारा जय प्राप्त की। अभी भी जय शेष है और सदियों पहले की गई युगावतार की संभावना गुंजायमान है—“म्लेच्छानिवह निधने कलयसि कर वालम्। धूम केतुमिव किमपि करालम्। केशव धृत कल्कि शरीर जय जगदीश हरे।”

यह सन्दर्भ भगवान् कृष्ण ने स्वतः स्वीकार किया है—“परित्राणाय साधूनां, विना-शयाच्च दुष्कृताम्। धर्मं संस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥” उज्जयिनी भावधारा के अन्तर्गत महर्षि व्यास ने भगवान् का मानवीकरण किया। मानव जगत् को गुण दृष्टि से देखा और भगवान् को गुण दृष्टि से देखा। गुण और गुणी का अभिन्न सम्बन्ध गुण की आधार भूमि पर अभिव्यक्त किया। भगवान् मनुष्य हुआ मनुष्य ने मनुष्य की बात सुनी। मानवीय क्षति की ओर मानवीय पूर्ति बनकर धावित हुआ। मनुष्य ही महामहिम हुआ और मनुष्य ही महिमा का गायक हुआ।—

“रूपमरूप विषजितस्य भवतो ध्यानेन यद् कल्पितम्।
स्तुत्या निर्वचनीयता खिल गुरो दुष्कृता यन्मया।
व्यापित्वंच निश्कृतं भगवतो यत्तीर्थ यात्री-दिनाम्।
क्षन्तव्य जगदीश मद्विकलतो, दोषो त्रयं-मत्कृतम् ॥”

महर्षि व्यास के उपर्युक्त कथ्य में सर्वाधिक मूल्यवान् तथ्य यह है कि विश्वजीवन में मानवीय उज्जयिनी शक्ति को अधिक से अधिक संप्राण और उदात्त करने के लिए ही व्यास ने अरूप को रूप दिया है।

अनिर्वचनीय को स्तुतियों की सीमा में वचनीय किया है और उसकी अनन्त व्यापकता को तीर्थों अथवा मंदिरों में परिमित किया है। मनुष्य अपने जीवन के समस्त पक्षों में जय-वन्त हो और जय का जयों में तादात्म्य हो, विश्वकल्याण के ही इस महाभिक्रम में व्यास ने विकलता को स्वीकार किया, भगवान् से स्वीकृत विशेष के लिए क्षमा याचना की। उज्जयिनी भाव-धारा की सगुणायित-विभूतियां राम, कृष्ण आदि रूपों में प्रस्तुत की गईं। क्या मूर्ति भंजक इस बृहत्तम तत्त्व ज्ञान के समक्ष हमें लज्जित दृष्टिगोचर नहीं हो रहे हैं?

भारतीय मूल की उज्जयिनी भाव-धारा द्वारा ही सम्पूर्ण विश्व, देवी जीवनधारा से युग-युग जुड़ा रह सका है। अभी भी यदा-कदा जुड़ रहा है। निश्चय ही अति दूर नहीं, भविष्य में जुड़कर रहेगा। समस्त विश्व का नेतृत्व निकट भविष्य में ही विश्वस्तरीय सुख, शांति और समृद्धि के सन्दर्भ में भारत को ही प्राप्त होगा। भारत देश अपनी मौलिक परम्परा में प्रकाशित आचार-विचार में रत—भा (प्रकाश), रत (रममान)—अर्थात् भारत रहने का संस्कारगत है। इस संदर्भ में आर्ष शुभेच्छा प्रमाण है—

“सर्वे भवन्तुसुखिनः, सर्वे सन्तु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, माकश्चित् दुःख माप्नुयात् ॥”

भगवान् कृष्ण ने गीता में गुणात्मक नाम “भारत” से संबोधित किया है। अर्जुन के प्रति उन्होंने कहा कि—

“यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।

अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥”

भारतीय चिंतन ही उज्जयिनी भाव-धारा है—सांसारिक सार्थक जीवन के लिये उसमें मानवीय भावना से ओत-प्रोत समय क्रांति है, मानवीय मस्तिष्क के चरम विकास के लिये उत्क्रान्ति है और अन्त में अति मानवीय उपलब्धि आध्यात्मिक शांति है।

“ओम्: पूर्णमद-पूर्णमिदं पूर्णात्, पूर्णं मुदच्यते ।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते ॥”

उज्जयिनी भावधारा से ही यह बोधगम्य हो जाता है कि—परमात्मा सभी के भीतर है। वे भाग्यशाली हैं जिनके हृदय में उसकी ज्योति प्रकट हो जाती है। वास्तविकता यह है कि जिस शक्ति से आंख को देखने की शक्ति, कान को सुनने की शक्ति, बुद्धि को निर्णय, करने की शक्ति और मन को सोचने-विचारने और सनझने की शक्ति प्राप्त होती है, वही परमात्मा है। वह हमारे भीतर है फिर भी हम उसे देख नहीं सकते। देख न सकना, उसके होने का निबंध नहीं करता। हम अपने भीतर की बहुत सी बातों को नहीं देख सकते। अपनी आंखों को ही नहीं देख सकते, पर तथ्य यह है कि उन्हीं आंखों से हम सब कुछ देखते हैं। इसी तथ्य कथ्य बोध कराने वाली चिन्तन धारा उज्जयिनी भावधारा में समाहित है।

□

जम्मू-कश्मीर के लेखकों से विशेष अनुरोध

राज्य की कला, संस्कृति एवं साहित्य के सृजन एवं

विकास का साक्ष्य प्रस्तुत करती रचनाएं

आमंत्रित हैं, अविलम्ब भिजवाएं।

—सं०

बहिरंग

आधी दुनिया का एक सच आशा रानी व्होरा

□ विष्णु प्रभाकर

रेखाओं में अंकित नारी की रोग-जर्जरित एक संक्षिप्त-सी काया। चेहरे पर थकी उज्ज्वल स्थिति से आवृत कठना और स्नेह के तरल भाव, लेकिन आंखों में इसके ठीक विपरीत संकोच रहित दृढ़ निश्चय के साथ कुछ करने की आकुल-व्याकुलता, निरंतर आगे और आगे बढ़ने की प्रबल आकांक्षा।

मनोवैज्ञानिकों ने कहा है, आंखें मन का दर्पण हैं। मनुष्य जो दिखता है, उसके विपरीत वह जो है, उसकी परिचायिका हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि उनका रोगों से जर्जरित शरीर भले ही दुबल हो गया हो, पर उनकी अदम्य इच्छा शक्ति और संकल्प को जरा भी आंच नहीं पहुंचा सका है।

वह न केवल शारीरिक वेदनाओं से जूझती आ रही हैं, बल्कि किसी को भी तोड़ देने वाले पारिवारिक संकट को भी हंसते-हसते झेला है उन्होंने। पीड़ा उन्होंने सही है, पर वह कभी भी उन पर और उनके संकल्प पर हावी नहीं हो सकी है। उन्होंने इस चिर-संचित वेदना को शक्ति में परिवर्तित कर लिया है।

पहाड़ों में जैसे पत्थरों का काम गिरना होता है और यात्री का काम चलना, वैसे ही इस जीवन-यात्रा में वह निरंतर चलती आ रही हैं। चरंवेति, ...चरंवेति...उनका मूल मंत्र है। वह इस बात की चिंता नहीं करती कि कोई उनके साथ है या नहीं, वह तो विश्वकवि के इस आह्वान की उपासिका हैं :

“यदि तोर डाक शुने केउ न आवे तवे

एकला चलो रे, एकला चलो रे, एकला चलो रे

ओरे, ओरे, ओरे अभागा ।

जो इस मंत्र को साधकर चलता ही रहता है वह सतयुग में अर्थात् सर्वश्रेष्ठ युग में होता है। शिव की भांति विष पीकर भी जगत की प्राण-रक्षा करता है।

आशारानी व्होरा के नाम से जिस नारी को हम जानते और पहचानते हैं, उसका वास्तविक नाम है श्रीमती शकुन्तला व्होरा। जैसे ये दो भिन्न नाम हैं, वैसे ही उनका अंतरंग और बाह्य रंग नितांत भिन्न है। बाहर से भले ही वह सिकुड़ी-सिमटी एक दुर्बल सी नारी दिखती हों, कहुंगा नारी का ढांचा मात्रा दिखाई देती हों, पर भीतर से वह सचमुच आशा का मूर्त रूप हैं। उनका ऐसा दिखने का रहस्य उनकी जीवनव्यापी परिस्थितियों को सहज स्वीकारने में है। वे नहीं हारीं, परिस्थितियाँ उनसे हारी हैं। किसी शायरा की प्रस्तुत पंक्तियाँ उनके व्यक्तित्व को उजागर करने के लिए कितनी सटीक हैं :

टूटी हुई मुंडेर पर, एक छोटा-सा चिराग
मौसम से कह रहा है, आंधी चला कर देख।

आशा जी का जीवन वही छोटा-सा चिराग है, जो उनके जीवन में उठने वाली आंधियों को चुनौती ही नहीं देता, बल्कि उनकी चिंता किए बिना चुपचाप उनके बीच से होकर आगे बढ़ता, आंधियों को जीवनदायी ज्योति में परिवर्तित करता चला जाता है।

यही ज्योति तो संकल्प का मूर्त रूप है। इसी संकल्प ने उनकी रोग-जर्जर काया को शक्ति रूपा बना दिया है।

याद नहीं आता, मेरा और उनका परिचय कब और कैसे हुआ? शायद किसी रचना को लेकर पत्र-व्यवहार शुरू हुआ था। मेरी फाइल में उनका पहला पत्र 11-12-1954 का है, जो उन्होंने मुझे मूह से लिखा था और वह इस बात का प्रमाण भी है कि इससे पूर्व मेरी उनसे जान-पहचान हो चुकी थी। वह उस समय वहाँ राज्य सरकार द्वारा मान्यता व अनुदान प्राप्त 'आशा कला केन्द्र' चला रही थीं।

जिला झेलम के एक कस्बे में 7 अप्रैल, 1911 को उनका जन्म हुआ था। कहुंगा, एक अनवरत संघर्षशील और कर्मठ आत्मा का इस धराधाम पर अवतरण हुआ था। जिला झेलम का वह कस्बा अब पाकिस्तान में है। विवाह के समय तक उनकी शिक्षा केवल मिडिल तक हुई थी। उसके बाद जीवन के कंटीले मार्ग, पर चलते हुए भी उन्होंने एम० ए० (समाजशास्त्र) और हिन्दी प्रभाकर तक शिक्षा प्राप्त की। बंटवारे की त्रासदी के बाद अपनी जन्मभूमि से बिछुड़ जाने पर कहां-कहां भटकीं, यह एक लंबी कहानी है। वैसे उन्होंने विभाजन से पूर्व ही 1946 में पंजाब में 'नारी रक्षा समिति' की स्थापना की थी और उसका संचालन भी किया था। क्या इसका अर्थ यह नहीं कि उनके मन में प्रारम्भ ही से अर्थात् 25 की आयु से ही नारी जाति को गर्त से निकाल कर, उसकी वास्तविक गरिमा दिलाने की प्रबल भावना रही थी। तब से लेकर आज तक वह बिना रुके, बिना थके, वही कार्य करती चली आ रही है।

मैं साक्षी हूँ उनके उत्साह, उनकी सजगता और सबको अपने पास खींच लेने वाली चुम्बकीय शक्ति का। बहुत धीमे स्वर में, इतने धीमे कि कभी-कभी तो मैं समझ भी नहीं पाता था कि क्या कहा, वह जब अपनी कण्ठ-कथा सुनातीं और साथ ही साहस भरे कार्यों

का परिचय देतीं तो मैं बस ठगा-सा देखता ही रह जाता। विभाजन के तुरंत बाद उन्होंने ग्वालियर में शरणार्थी महिलाओं के पुनर्वास के लिए 'महिला शिल्प केन्द्र' की स्थापना ही नहीं की अपितु 1950 तक उसका संचालन भी किया। उसके बाद मूह चली गई और वहां की रेडक्रास तथा अन्य महिला-संस्थाओं में विभिन्न पदों पर कार्य करती रहीं। इसके साथ ही इन्दौर संभाग के प्रमुख महिला प्रशिक्षण केन्द्र -- 'आशा कला केन्द्र' की स्थापना की। इसके तत्वाधान में प्रौढ़ महिलाओं और बच्चों की शिक्षा के उद्देश्य से अनेक गतिविधियों का संचालन किया।

इसके बाद पारिवारिक परिस्थितियों के कारण वह दिल्ली आ गयीं। तब से वह यहां नाना प्रकार के समाज शिक्षा के कार्यों का संचालन करती आ रही हैं। दिल्ली नगर निगम और शिक्षा मंत्रालय के अंतर्गत जो कार्य उन्होंने किए, उनमें सबसे उल्लेखनीय है, समाज कल्याण पुनर्वास निदेशालय द्वारा संचालित आई० टी० आई० की आर्गनाइजर के रूप में कार्य।

लेकिन आशारानी का परिचय इतना ही नहीं है। उनके मानस को समझने के लिए उन पत्रों के अर्थ समझने होंगे, जो उन्होंने मुझे दिसम्बर, 1954 से लेकर आज तक लिखे उसके बाद ही समाजसेवा, पत्रकारिता और साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने जो दुर्लभ कार्य किए, उनको समझा जा सकेगा, उनके महत्व को समझा जा सकेगा।

जैसा कि मैंने शुरू में लिखा है, उनका सबसे पहला पत्र मेरे पास 11-12-1954 का है यानी 40 वर्ष पूर्व का, जो उन्होंने मुझे मूह से लिखा था। वहीं पर उनसे मेरी पहली भेंट भी हुई थी।

मैं समझता था कि वह अविवाहित हैं इसलिए मैंने अपने पत्र में उन्हें कुमारी संबोधित किया था लेकिन वह तो विवाहित थीं। इस संबोधन को लेकर उन्होंने मुझे बड़ा रोचक पत्र लिखा था। उससे उनकी विनोदप्रियता का पता चलता है। अपना वास्तविक परिचय देते हुए उन्होंने लिखा था, समझ लीजिए, जीवन-साहित्य के अध्ययन में आपकी एक सहपाठिनी हूं। किन्तु आपके समान सिद्धहस्त लेखक नहीं। न इतनी प्रतिभा है, न सामर्थ्य ही। शिक्षा कम है किन्तु अनुभव, विशेषकर कटु अनुभव, कम नहीं हैं। अन्य संघर्षों के साथ-साथ पिछले छः वर्षों से अनेकानेक रोगों से भी मेरा संघर्ष जारी है। इसलिए कुछ करने में असमर्थ रह जाती हूं। आजकल एक 'कला केन्द्र' का संचालन कर रही हूं। जानकारी के लिए विवरण-पत्र साथ में भेज रही हूं। अधिक समय और शक्ति उसी में खर्च हो जाती है। अधिक कुछ करने के लिए थका मस्तिष्क साथ नहीं देता। पढ़ने में रुचि है, प्रारंभ में अधिक पढ़ नहीं सकी व अब परिस्थितियां व स्वास्थ्य साथ नहीं देते। लिखने में भी रुचि है और यह जीवन की एक प्रबल साथ भी रही है। परन्तु सफलता अभी तक नहीं मिली है। शायद 'समाज' के आगामी अंक में 'पत्र-साहित्य' स्तंभ के अंतर्गत आप मेरी एक रचना देख सकेंगे, जो आपकी उस रचना की श्रेणी में ही आती है, किन्तु भिन्न रूप में। यदि आप पढ़ें तो अपनी सम्मति अवश्य लिखिएगा। वैसे मेरा झुकाव अधिक कविता की ओर है किन्तु अभी दो-चार ही प्रकाशित हो सकी हैं। आपने सहायता का आश्वासन दिया है, उससे लाभ उठाने का अवश्य प्रयत्न करूंगी।

एक बात और, मेरा नाम शकुन्तला बहोरा है। आशारानी के नाम से लिखती हूँ। इसे मेरी एक दुर्बलता समझ लीजिए या कुछ भी।”

यदि आज मैं एक अपरिचित के रूप में परिचय पाना चाहता तो उस कुछ के अन्तर के अतिरिक्त, जो समय के साथ आ जाता है, वह ऐसा ही कुछ लिखती। कैसे उन्होंने शिक्षा प्राप्त की और कैसे वह अपने क्षेत्र की जानी-मानी लेखिका बन गयीं, यह उनके अध्यवसाय और संकल्प का द्योतक है। उसके बाद उन्होंने मेरी रचनाएं पढ़-पढ़कर जिस प्रकार उनकी समीक्षा की, उससे स्पष्ट हो जाता है कि वह रचना में ही बहुत गहरे नहीं पैठती थीं, बल्कि लेखक के अन्तर-मन का भी अवगाहन कर लेती थीं। बाद में उनके पत्र मेरी रचनाओं पर ऐसी ही टिप्पणियों से भरे पड़े हैं।

अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के हिन्दी वर्ग में मेरी जिस कहानी ‘शरीर से परे’ को प्रथम पुरस्कार मिला था, उसकी उन्होंने बेलाग आलोचना की थी।

“मनोविज्ञान के ज्ञाता हैं और नारी चरित्र-चित्रण के सिद्धहस्त लेखक भी, किन्तु फिर भी आप नारी नहीं हैं। इसलिए संभव है, आपका अध्ययन अभी अधूरा हो! मैं चाहती हूँ, आप नारी-हृदय का और अधिक गंभीर अध्ययन करें और कुछ इस प्रकार का लिखें कि समाज में नारी के ‘मानवी’ रूप की प्रतिष्ठा शीघ्र हो सके और उपरोक्त उलझनों व आशंकाओं को स्थान न रहे। आपकी सर्वश्रेष्ठ कहानी ‘शरीर से परे’ इतनी ऊंची उठकर भी इसी उलझन में कुछ उलझ गई है और इसके समाधान को स्पष्ट न कर केवल आदर्श ही उपस्थित कर सकी है। वस्तुतः एक सुलझी हुई विचारधारा की रूपरेखा, जो नग्न यथार्थवाद व ऊँचे आदर्शवाद के बीच की कड़ी बन सके, की आज के समाज को अविलंब आवश्यकता है, क्योंकि जीर्ण दीवारों को गिराने में भी पर्याप्त समय व गहरी रगड़ की अपेक्षा होगी। आशा है, आप मेरा आशय समझ गए होंगे।”

इसी तरह उन्होंने मेरे उपन्यास ‘स्वप्नमयी’ का, जो उन दिनों धारावाहिक रूप में ‘धर्मयुग’ में छप रहा था, की भी प्रखर आलोचना की थी। लेकिन इसके साथ ही बड़े आत्मीयतापूर्ण ढंग से अपनी घर-गृहस्थी की समस्याएं और गिरते स्वास्थ्य के बारे में भी लिखती रहती थीं। हम दोनों में भाई-बहिन का संबंध हो गया था, जो आज तक उसी तरह अक्षुण्ण है। वह राखी बांधती रहीं, लेकिन उसके प्रतिदान के रूप में पुस्तकों को छोड़कर व.भी कुछ नहीं चाहा। एक बार मेरी पत्नी ने शायद उन्हें साड़ी दी या देने का प्रस्ताव किया, तब उन्होंने लिखा था, “पर साड़ी की समझ में नहीं आयी। कैसे साड़ी व क्यों? क्या आप मुझे साड़ियां लेने वाली बहिन ही बनाना चाहते हैं? इससे ऊपर नहीं उठाएंगे?”

और वह आज तक ऊपर ही उठीं रहीं। सन् 55 से लेकर 58 तक का पत्र-व्यवहार इस बात का साक्ष्य है।

इसी बीच में वह एक बार दिल्ली भी आईं। तब मैं सपत्नीक उनसे मिलने उनके घर गया था। वह दृश्य हू-ब-हू मेरे मस्तिष्क पर अंकित है। वह बिल्कुल मेरी कल्पना के अनुरूप थीं। उनके परिवार को देखकर मैं समझ गया था कि यद्यपि वे सब शिष्ट और भले लोग थे लेकिन वह उस बातावरण में नहीं रह सकती थीं। उन्होंने मूढ़ लौटकर मुझे

जो पत्र लिखा, वह मेरे अध्ययन के बिल्कुल विपरीत था, “निश्चय ही आपने मुझे अपनी कल्पना के स्तर से बहुत नीचे पाया होगा, क्योंकि मैंने ऐसा अनुभव किया है कि मेरी संस्कारगत हीनभावना मुझ में अधिक उभर आयी थी, यद्यपि अपनत्व को औपचारिकता पर विजय प्राप्त थी।” लेकिन उनका यह वाक्य ‘अपनत्व को औपचारिकता पर विजय प्राप्त थी’ उनकी सफलता की कुंजी है। इसलिए वह सारे झंझावातों के बावजूद न तो कभी रूकीं, न कभी हारीं।

जिन हादसों से डरते हैं लोग
उन हादसों ने हमको पाला है।

उर्दू का यह शेखर, शायर ने मानें उन जैसे व्यक्तियों को ध्यान में रखकर ही लिखा होगा। हीन भावना मुझ में भी है और मैं उससे जूझना भी जानता हूँ इसलिए उनकी कर्मठता मुझे कभी-कभी आश्चर्यजनक अवश्य लगती है, पर असंभद नहीं।

वह मुझ से पुस्तकें भी मंगवाती हैं तो इस बात की शिकायत भी उतने ही अधिकार से करती हैं कि मैंने उनके पुत्र से वान क्यों नहीं की? इससे अधिक अपनापन और क्या हो सकता है। वह मेरी रचनाओं की आलोचना कर सकती हैं तो मुझ से मार्गदर्शन भी चाहती हैं। उनका सार्वजनिक परिवार बहुत बड़ा है और बहुत अपना। अपने गिरे हुए स्वास्थ्य की चिन्ता किए बिना वह निरंतर घूमती रही हैं।

जब वह दिल्ली आकर रहने लगीं तो मेरी पत्नी से उनकी बहुत घनिष्ठता हो गयी थी, इसी कारण मेरी पत्नी सदा उन्हें अपनी ननद करके मानती रहीं।

साहित्यिक आदान-प्रदान हम दोनों के बीच निरंतर होता रहा है और आज भी हो रहा है। वह तो सदैव खोजरत रहती हैं इसलिए उनके नाता प्रकार के प्रश्नों का सामना मुझे करना पड़ता रहा है और मुझे जब भी नारियों के संबंध में जानना होता है तो मैं उन्हें परेशान करता हूँ। ‘अर्द्धनारीश्वर’ के रचनाकाल में यदि उनकी सहायता नहीं मिल पाती तो शायद मैं उसे वह रूप नहीं दे पाता, जो अब दे सका हूँ।

उनका रचना-संसार जितना व्यापक है, उतना ही विविध है। एक ओर तकनीकी क्षेत्र में सौंदर्य से लेकर बुनाई तक पर अत्रिकार से लिखना, तो दूसरी ओर भारतीय कला शिल्प, शिशु पालन, लोक कल्याण, प्रौढ़ों और बच्चों के लिए रचना करना, कुछ भी तो उनसे नहीं छूटा।

कविता, कहानी, संस्मरण, साक्षात्कार से भी उनको लगाव है, लेकिन भारतीय नारी के संबंध में अधिक अध्यवसाय खोज के बाद उन्होंने जो पुस्तकें लिखी हैं, वे ही उनका वास्तविक परिचय है। कुछ पुस्तकों के नाम मेरे सामने हैं :

1. भारतीय नारी : दशा और दिशा
2. नारी शोषण : आईने और आयाम
3. भारतीय नारी : अस्मिता और अधिकार
4. नारी विद्रोह के भारतीय मंच

कहां सामाजिक कार्य, कहां साहित्य-सृजन, कहां शोध, कहां पत्रकारिता? अनेक पत्र-पत्रिकाओं में स्तंभ लिखती आ रही हैं और पत्रों के उत्तर भी देती हैं। इन पत्रों ने मेरे उपन्यास 'अर्द्धनारीश्वर' को बहुत कुछ दिया है।

उनकी इस बहुमुखी प्रतिभा के सभी कायल हैं। उनके कार्यों को सराहा गया है। अनेक पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित किया गया है, जिनमें 'रचना पुरस्कार', कलकत्ता, 'अंबिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार', भोपाल, 'हिन्दी' अकादमी पुरस्कार, दिल्ली, 'साहित्य भूषण सम्मान', लखनऊ आदि प्रमुख हैं। वे अनेक जानी-मानी संस्थाओं की सदस्या रह चुकी हैं और हैं, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, हिन्दी अकादमी और गार्गी कालेज आदि ऐसी ही संस्थाएं हैं।

वास्तव में शकुन्तला व्होरा या कहें आशारानी, किसी का भी सही-सही चित्रण करना बड़ा कठिन कार्य है। वह निर्द्वन्द्व अपनी खोज की पगडंडियों पर आगे बढ़ती रही हैं। उस स्थिति में बढ़ती रही हैं, जब उनका परिवार, विशेषकर उनके जीवन साथी उनके सहयोगी नहीं बन सके। पति की मृत्यु से पूर्व लिखे उनके पत्रों से इसकी झलक मिलती है।

"व्होरा जी भी अब उम्र के साथ हर समय 'डिस्टर्ब' किए रहते हैं। ऊपर से सुनते नहीं। चीखकर ऊंचा बोलना मुझ से हो नहीं पाता और यह कठिनाई अतिरिक्त बढ़ गयी है। या तो सोचें या सुनें। नौकर मिलना, निभाना आजकल मुश्किल, फिर वह टिकने भी नहीं देंगे, बिगाड़ देंगे उसे भी।"

ऐसी स्थिति में भी उनके सामाजिक कार्यों में जरा भी कमी नहीं आयी। ऐसा लगता है, जैसे वह अपने चारों ओर ग्रह मण्डल की तरह नाना रूप सामाजिक कार्यों से घिरी रहना चाहती हों। अभी कुछ समय पूर्व उन्होंने बच्चों के लिए नोएडा के अपने घर में एक लायब्रेरी की स्थापना की। उसके लिए पुस्तकें इकट्ठी करने में जो परिश्रम उन्हें करना पड़ा, उसकी जरा चिन्ता नहीं की। निवास स्थान भी काफी बदले। बेटा अच्छे पद पर कार्यरत है, लेकिन, जैसा मैंने पहले भी कहा है, उनकी गृहस्थी का संसार तो अपार है, घर की दीवारें उन्हें बाध नहीं सकतीं। उनका अपना शरीर रोगों का घर है लेकिन 'चरैवेति-चरैवेति' का मंत्र निरंतर उनके कानों में अमृत घोलता रहता है।

मुझे तो इस समय रॉबर्ट फ्रास्ट की वे पंक्तियां याद आ रही हैं, जो भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू की मेज पर रखी रहती थीं। क्या वे ही पंक्तियां आशा रानी के जीवन का आदर्श नहीं बन गयी हैं—

जंगल हैं तारीक गहरे रूपहले
मगर मुझको वादे सभी हैं निभाने
कई कोस जाना है सोने से पहले
कई कोस जाना है सोने से पहले।

□

पंजाबी साहित्य में 'मीठे बोल' वचन-अनमोल

□ आशा गुप्ता

मीठे बोल जीवन की नैतिकता का आधार है। यह वह कला है, जो सब के भाग्य में नहीं होती। जिस व्यक्ति को मधुर वचनों या मीठे बोलों जैसी बहुमूल्य विधि मिल जाती है, उसका तो जीवन मानों सफल हो जाता है। यह एक ऐसी दीप्त कला है जो मनुष्य के अन्दर के सभी अच्छे गुणों को प्रकाशमान करती है। दया, परोपकार, संतोष, सहनशीलता आदि अनेक अच्छे गुण हैं जो एक व्यक्ति को एक अच्छा इन्सान बनाते हैं। परन्तु मीठे बोलों जैसी सम्पत्ति इन्सान को एक उत्तम पुरुष का सम्मान दिलवाती है। क्योंकि मीठा बोलने में कोई कीमत नहीं देनी पड़ती। हमारी जिह्वा नहीं घिसती और न ही किसी का कर्ज अदा करना पड़ता है।

गुरुवाणी में भी कहा गया है कि 'मिठ्त नीवीं नानका गुण चंगआईयां तत्' अर्थात् मीठा बोलना और वितन्न होकर चलना सारे के सारे अच्छे गुणों का निचोड़ है, सार है, है। इन्सान चाहे कितना भी अच्छा क्यों न हो लेकिन उसकी कड़वी जवान एव उसके कड़वे बोल उसकी सभी अच्छाइयों को मिट्टी में मिला देते हैं। जवान मीठी न होने से सारे अच्छे गुण अर्थहीन हो जाते हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि हर सभ्य तथा उत्तम मनुष्य का यह लक्षण विशेष होता है कि वह सब के साथ मीठा बोले कटु नहीं; जैस कि गुरुवाणी हमें यह संदेश भी देती है कि—

नानक फिक्का बोलीयै तन मन फिक्का होइ

प्रत्येक व्यक्ति की यही कोशिश होनी चाहिए कि वह कटु वचन कभी भी मुख से न निकाले। मधुर वचन बोलना उसका स्वभाव बन जाना चाहिए क्योंकि ऐसे वचन चुम्बकीय

शक्ति का काम करते हैं। दूर-दूर बैठ कर सुनने वालों को भी मित्र बना देते हैं। उनमें एक दूसरे को मिलने की तीव्र आकांक्षा पैदा कर देते हैं। जबकि इसके विपरीत कटु अथवा कड़वे बोल तलवार की तेज धार से भी अधिक तीक्ष्ण होते हैं। इनके द्वारा किया गया प्रहार कभी न मिटने वाला होता है। यह सज्जन को भी दुश्मन बना देते हैं। मीठा बोलने वाले व्यक्ति को हर स्थान पर सराहा जाता है। उसको सभी प्यार करते हैं, उसकी प्रशंसा स्थान-स्थान पर होती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि द्रोपदी के कर्कश बोल 'अन्धे का पुत्र अन्धा' महाभारत का कारण बने, जबकि बाबा फरीद के मिठास भरे शब्दों ने लाखों हिन्दुओं को इस्लाम की ओर आकर्षित किया। शायराना अन्दाज में भी तो यह कहा गया है कि—

हंस हंस के मिल उलफत
रो रो के दुनिया याद करे

मधुर ध्वनि से उच्चरित मीठे बोल दुश्मन पर भी विजय प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए महान व्यक्ति हमेशा उसे कहा जाता है जो कड़वा बोलने वाले के साथ भी मधुर ही बोले। यह काम देखने में तो बहुत मुश्किल दिखाई देता है, पर याद रखने वाली बात तो यह है कि मीठे बोल कभी व्यर्थ नहीं जाते। ये दूसरे पर स्थायी प्रभाव डालते हैं और ऐसा करने से मनुष्य की अपनी सहनशीलता में वृद्धि होती है। कटु वचनों के लिए अक्सर कहा जाता है कि 'तलवार का घाव मिट जाता है पर जवान का नहीं मिटता', इसमें कोई शंका नहीं कि मीठे बोल, मीठी जुबान खुशियों भरे खजाने की बहुमूल्य कुंजी होते हैं। इनकी महक रात की रानी की महक की भांति दूर-दूर बैठे लोगों को भी तरोताजा करती रहती है। है। इसलिए हम सब को ऐसे फूल की खुशबू की तरह ही बनना चाहिए।

भगवान की दी हुई जवान जैसी बहुमूल्य देन केवल इन्सान के हिस्से ही आई है। यह जवान ही एक ऐसा साधन है जो मनुष्य के आंतरिक जगत का शीशा है। ऐसे पारदर्शी शीशे में से उसकी आंतरिक मानवीयता की झलक सहज ही देखी जा सकती है। मनुष्य जब बोल रहा होता है तो इससे उसका निजी व्यक्तित्व सामने आता है। उसके एक-एक शब्द से उसके अन्दर की तस्वीर खिंची जाती है। उसकी सोच शक्ति जितनी भी खूबसूरत होगी, उतने ही उसके बोल मीठे तथा आकर्षण शक्ति भरपूर होंगे, जबकि बुरी तथा मन्द सोच वाले व्यक्ति हमेशा बुरा ही बोलते हैं। अर्थात् बुरे शब्द ही मुंह से निकालते हैं।

मनुष्य की वाणी ही एक ऐसी शक्ति है कि इसके साथ बोली जाने वाली भाषाओं को भी मीठा कहा गया है। डोगरी भाषा के लिए पदमा सचदेव के यह बोल 'मिट्ठी ऐ डोगरें दी बोली ते खंड मिट्ठे लोक डोगरे' अक्सर दोहराये जाते हैं। पंजाबी भाषा को फिरोजदीन शरफ ने 'माता' कहकर उसकी आरती उतारी है—

तेरी जै पंजाबी माता
तेरे पूजे चरण विधाता।

इसके साथ-साथ उसने यह भी कहा है कि 'हे पंजाबी माता तेरे तो बोल-बोल में

मिश्री घुली हुई है—

तू तां साड़ी मिट्ठी बोली
बोल-बोल विच्छ मिश्री घोली

इसी प्रकार 'समरथ दी वावनी' में भी कहा गया है कि 'मिट्ठी वाणी पंजाबी जानी।' कवि गुरचरण सिंह भी लिखता है कि—

सुभा दे पंजाबी हां, पंजाबी साड़ी बोली है
मिठड़ी शहतूत जिही शहद नालो वद् मिट्ठी
वावे रकाव राहीं एहो बोली है।

हम यह कह सकते हैं कि अगर पंजाबी बोली शहतूत की भांति मीठी है यां गुरुनानक देव जी ने भी रकाव राहीं इसी को ही संगीत भरी मिठास दी है या फिर गुरचरण सिंह अनुसार यह बोली शहद से भी ज्यादा मीठी है, तो फिर कोई पंजाबी कड़वे बोल-बोले तो यह ही समझना चाहिए कि वह पंजाबी ही नहीं है। शहद से सम्बन्धित एक रसम भी हमारे समाज में प्रचलित है कि नव-जात शिशु को कुछ भी खिलाने से पहले उसकी जीभ पर शहद से '३ॐ' लिखा जाता है। यह रसम इसलिए भी महत्वपूर्ण मानी जाती है कि बच्चा बड़ा होकर शहद जैसे मीठे बोल बोलकर अपनी जीभ के रस द्वारा सब पर विजय प्राप्त करे।

फिरोजदीन शरफ की तरह केदारनाथ तिवारी भी पंजाबी बोली को मिश्री की तरह मानता है—

साड़ी मां पंजाबी बोली, सिधी साधी आली भोली
मिट्ठी जियूं मिश्री घोली।

प्रो० पूरन सिंह ने भी इसे शहद मीठी कहा है और धनीराम चाविक ने 'मनोहर मीठी।' हरदेव दिलमीर लिखता है कि -

इहदे विच्छ मां देवे लोरी
माखिओं मिट्ठी दुध कटोरी।

लगभग प्रत्येक सभ्य समाज में हर अवसर पर मीठा बोलने के बारे में कुछ लोक-गीत और कुछ रसमोरेवाज होते हैं। जैसे हम लोहड़ी के अवसर पर गुड़, रेवड़ीयां, खजूरें आदि सब मीठी चीजें मिल कर खाते हैं, वैसे ही महाराष्ट्र में भी माघी (मकर संक्रांति) लोक-गीत प्रचलित है। वहां के ऐसे ही एक लोक-गीत में कहा गया है कि—तिल गुड़ खाओ, मिट्ठा बोलदे जाओ। वैसे भी हम रोजाना जीवन में भी देखते हैं कि अगर हमारे सामने मीठी और कड़वी दो वस्तुएं खाने के लिए पड़ी हो तो हम में से कोई भी इतना मूर्ख नहीं होगा कि मीठे पदार्थ को छोड़ कर कड़वे को खाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाए।

मधुरता अर्थात् मिठास सचमुच ही हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। संगीत के मिठास भरे जादू से कौन प्रभावित नहीं होता ? यह संगीत चाहे स्टेज पर गा रहे संगीतकार

के मुख से निकल रहा हो यों फिर टी०वी०, रेडियो की तारों की आवाज से, इसके प्रभाव में कोई अन्तर नहीं होता। रांझे की बंजली (बंसुरी) से निकलने वाली धुनों की मिठास ने गांव के सभी लोगों को एकत्र कर लिया था। कृष्ण की बांसुरी गोपियों को हर समय आकर्षित करती रही। राधा और उसकी सखियों के अतिरिक्त गऊएँ भी गोपाल की बांसुरी की मीठी धुन के पीछे भस्त होकर चलती थीं। बीन की मिठास से जहरीला सांप भी वश में हो जाता है। सांप जब कभी किसी तरीके से भी पकड़ा न जा सके तो सपेरे को बुलाकर बीन बजवाई जाती है और बीन के संगीत को सुनकर सांप कहीं भी छिपा हो, बाहर आकर भस्त हो जाता है। तानसेन के संगीत की धूम जगह-जगह पर मची है जिसके दीपक राग ने रात के समय ही सूर्य की रोशनी ला दी। बैजूबावरे के संगीत की मिठास ने तो दिन को रात में बदल कर भंवरे को कमल में ही बंद कर दिया लेकिन उसकी प्रेमिका ने 'रस चूमे उड़ जाये भंवरा' विशेष राग गाकर रात को ही कमल खिला दिया और भंवरा कंद से मुक्त हो गया। क्या ऐसे मीठे बोलों पर किसी का कोई मोल लगा? अर्थात् नहीं। लेकिन अगर कहीं विपरीत स्थिति हो तो बाबा भी गर्म और बाबे की गोलियां भी गर्म तो फिर तू-तू-मैं-मैं जैसे कटु बोल बहुत मंहगे पड़ते हैं। उसके लिए भारी कीमत अदा करनी पड़ती है क्योंकि लड़ाई-झगड़ा आरम्भ हो जाता है तो मुकदमेवाजी तक नौबत पहुंच जाती है।

सांप, गाय तथा भंवरे जहां मनुष्य द्वारा बजाई बीन, बांसुरी आदि से उत्पन्न संगीत की मधुर ध्वनि से वश में किए जाते हैं। वहां कई बार मनुष्य भी पशु-पक्षियों की मधुर ध्वनि पर मोहित हो जाता है। कौवे की काय-काय को सुनकर सब कानों में अंगुलियां दे लेते हैं जबकि पेड़ पर बंठी कोयल की मीठी आवाज दूर से ही सुनकर मनुष्य के कान खड़े हो जाते हैं कि इतनी मीठी आवाज कहां से आ रही है? एक उर्दू वाल कहानी जिसका शीर्षक ही 'मिट्ठे बोल' है, में कहानी का नायक कौवे की (काय-काय) सुनता है तो क्या देखता है कि लोग उसको नफरत भरी दृष्टि से देखते हैं और पत्थर मार-मार कर आगे निकलते जाते हैं, थोड़ा और आगे जाकर देखता है कि पिंजरे में बन्द एक छोटे से पक्षी की नौलामी की जा रही थी और हर कोई दूसरे से अधिक बोली देने के लिए तैयार है।

नायक की हैरानगी बढ़ती गई। पूछताछ के उपरान्त पता चला कि छोटे से पक्षी के लिए ज्यादा से ज्यादा बोली देने का कारण उस पक्षी 'मीठी आवाज' थी। अब नायक को ज्ञान हुआ कि उसका साथ लोग नफरत क्यों करते थे—इसका कारण उसकी अपनी कौवे जैसी 'कड़वी जवान' थी उसको अहसास हुआ कि अगर वह भी मधुर-ध्वनि में मीठी-मीठी बातें करें तो उस छोटे पक्षी की भांति सभी लोग उसे भी अवश्य ही पसन्द करेंगे। निस्सन्देह हम कह सकते हैं कि मीठी आवाज में या मीठे बोलों में इतना जादू भरा है कि यह दौलत मनुष्य के पास हो या पशु-पक्षियों के पास, बुरे से बुरे व्यक्ति को भी एक अच्छा और उत्तम पुरुष बना देती है। मीठे बोलों का यह जादू वह जादू है जो सिर चढ़ कर बोलता है।

□

पर्दा है पर्दा.....

□ अनिला सिंह चाड़क

पर्दे का आविष्कार किन-किन विपरीत परिस्थितियों में हुआ यह तो ठीक से नहीं कहा जा सकता पर इसका आविष्कारक दुनिया का सबसे समझदार इंसान होगा। आज से 200 ई० पूर्व जब आदि मानव इस धरा पर बिचरते थे तब शायद उन्हें लोक लाज की इतनी चिन्ता नहीं थी और न ही इतना विस्तृत लोक यानि समाज था कि उसे अपमान और अपवाद का भय होता। समय की गति निरन्तर जारी रही। उनकी चेतना जगी और उनकी आंखों पर लाज के पर्दे पड़ने और उधड़ने लगे।

उन्होंने स्वयं को या कहिये दूसरों को भ्रमित करने हेतु बाहरी आवरणों का निर्माण किया यानि पर्दे की आड़ में कुकर्म किये जाओ और जाहिर भी न हों। जैसे-जैसे कूटनीतियां, मक्कारियां अपने चरम बिन्दुओं पर पहुंचने के लिये लालायित रहीं उसे रफ्तार से पर्दे की आकृति अधिक से अधिकतर विकृत होती गई, पर्दे से हमें अपने विद्यार्थी जीवन की एक घटना याद हो आयी बचपन से हमें नाटकों में भाग लेने का बहुत शौक था और उनमें हम अपनी कला को प्रदर्शित करने हेतु एड़ी-चोटी का जोर लगाने से कभी न चूकते थे और अपने रोल की याद करते वक्त हमें यह भी याद न रहता था कि हम कौन सी जगह पर विचर रहे हैं, यानि डाइनिंग टेबल पर खाना खा रहे हैं या नहा रहे हैं। अपनी कलाबाजियों का एक ऐसा उदंड रूप हमारे सामने आया कि आज भी उस विवरण को याद करके हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हुआ यों कि नाटक के अपने डायलाग्स से सिर से पैर तक ओत-प्रोत हमने स्नानगृह में प्रवेश किया और उसे डायलाग्स का घोटा लगाने हेतु दिव्यस्थान समझा, इस बात से अनभिज्ञ कि हमारी एक अदब प्रिया दादी जी हमारे घर पधारी हुई हैं। हम अपनी पूरी गतिशीलता के साथ जोर-जोर से डायलाग्स याद करते और एक्टिंग करते रहे पर पता नहीं उस दिन हमारी प्रिय दादी जी के कानों तक हमारी मधुर आवाज कैसे पहुंच गयी, कुछ पलों तक तो उन्होंने दरवाजे के साथ कान लगा हमारे कंठ से निकलती मधुर

ध्वनियों को रोते, कराहते, गिड़गिड़ाते भिन्न-भिन्न तरीकों से तरंगित होते सुना और फिर ऐसी पलटों कि सारे मुहल्ले के लोगों की स्थिति का जायजा लेने के लिये एक-एक करके निमंत्रण दे आयीं और बोली ब्रिटिश को सन्निपात हो गया है कोई डाक्टर को बुलाओ हमने तुरन्त नल बन्द करके अपने अन्दर के प्रबुद्ध नाटककार को पीछे धकेल कर अपना भी एक कान वाथरूम के दरवाजे पर रख दिया और पाया कि अनेकानेक ध्वनियां हमारी इस तथा-कथित बीमारी को लेकर भिन्न-भिन्न तरह की अटकले लगा रहीं हैं और कुछ ही मिनटों में दरवाजा खोल बाहिर आकर हम किसी मुजरिम की तरह नज़रें नीची करके आगे निकल गये पर उन दिनों हम अपने भीतर एक क्रांतिकारी का कैरेक्टर जीते हुए क्रांतिकारी हो गये थे। जिसमें वह जलती हुई मशाल लिये हुए अपने सामने पड़ने वाले हर दुश्मन को धराशायी कर देती है तभी तो हम अति-क्रांतिकारी बने हुए जलती हुई मोमबत्ती को अपने कर-कमलों में थामे अपनी दादी जी के पीछे भागे और वह रात शायद हमारे अंदर के उभरते हुये नाटककार की अंतिम रात थी। वह तो नौ दो ग्यारह हो चुका था और हमारा सामना हो रहा था अपनी प्रिय दादी से और लम्बा सा इंजेक्शन पकड़े हुये डाक्टर साहिब से। इस अनहोनी घटना के बाद हमारी एक प्रिय सखी ने यह सुनहरी मौका खोने में ज़रा सी भी देर नहीं की और हमारा रोल उन्होंने हथिया लिया।

नाटक वाले दिन हम अपनी किस्मत को कोसते हाल में अग्रिम पंक्ति में बैठे बार-बार उस कुघड़ी को कोस रहे थे जब हमने नाटक के डॉयलाग याद करने की ठानी थी। अभी हम खुद को कोस ही रहे थे कि नाटक प्रारंभ हुआ और हमारी उन मौकापरस्त सखी ने मशाल को हाथों में उठाकर मंच पर प्रवेश किया जिनकी आंखों से शोले बरस रहे थे। वह निरन्तर अपने भूले डॉयलाग को याद करने के प्रयास में सब कुछ भूलती जा रही थी फिर उन्होंने मंच से ही नाटकीय अंदाज़ में मदद के लिये हमें मंच के पर्दों के पीछे बुलवाया। हमने जैसे ही पर्दों के पीछे का निरीक्षण किया तो देखा दस बारह प्राम्पटर्स हाथों में पन्ने थामे कतार बद्ध अथलेटे से भूलने वालों को डायलाग्स बता रहे थे पर हमारी सखी का प्राम्पटर पेज ही गंवा बैठा था और वह लगातार पर्दों को हिला-हिला कर उसे बोलने के लिये इशारा कर रही थी बेचारा प्राम्पटर अति दुखी होकर अपने सगे मामाजी को पुकारने लगा ‘...मामाजी कहां हो तुम ? कहां हो ?’ यह समझकर कि यह नाटक के डॉयलाग है मेरी सखी की भी मंच पर आवाज़ गुंजी। ‘‘मामा जी कहां हो ? कहा हो तुम ?’’ फिर उन के तकली मामा जी को डॉयलाग बोलना था। उन्हें कुछ नहीं सूझा। वह बोले, ‘‘यहां हूँ, मैं यहां हूँ। और डायलाग्स में अप्रत्यक्षित रूप से परिवर्तन हो गया कि नाटक की थीम ही बदल गयी और सारे प्राम्पटर्स बौखलाये से मंच पर आ गये। एक ट्रेजेडी कॉमडी में बदल गयी और इस अति रहस्यमय माहौल में पर्दा गिरने को बेताब था सो गिरा दिया गया। यह तो रहा पर्दा गिरने का एक और अंदाज। दुनिया में भिन्न-भिन्न जगहों पर भिन्न-भिन्न तरह के पर्दे हैं जो गाहे-बगाहे गिरते हैं या गिरा दिये जाते हैं। नाटक की बात हमने यूँ ही शुरू नहीं की थी पालियामेंट में भी जहाँ किसी गंभीर मुद्दे पर बहस होती है तो सांसद हल निकाले बगैर ही अति नाटकीय अंदाज में बहस के करुण रस को वीर रस में परिवर्तित करते हुये पर्दा गिरा देते हैं। जनता के मसलों को तो हटाइये एक तरफ उनके अपने मसले इतने गंभीर हैं कि उन्हें यदा-कदा वीर रस में डूब-उतारा कर उन्हें प्रेक्टिकल का आकार देना पड़ता है और जनता बेचारी इस द्वाब से घबरा कर अपने गम भूल जाती है।

पदां तब भी गिरता जब कोई नेता किसी और का लिखा भाषण इस प्रकार पढ़ता है कि देश को, हमें डूब कर बचाना है हमें उन दरिन्दों (असली शब्द कारिन्दों) का उत्साह बढ़ाना है जो ज्यादा अन्न उपजाकर जनता को खुशक-हाल बनाये। शायद नेता जी अपना चश्मा घर भूल आये थे या चश्मे का नम्बर बढ़ गया था देश की आवादी की तरह। भला हो राम जी का और मंत्री जी का कि 90 प्रतिशत जनता जो भाषण सुन रही थी, अतपढ़ थी। और मेरा मन ही मन उनसे निवेदन था कि उन्हें ज्यादा शिक्षित न बनायें कि वह सब कुछ समझ सके, जान सके और उनके क्रियाकलापों पर पर्दा गिर सके।

पर पर्दे तो पर्दे हैं। वे गिरने और उठने के लिये ही बने हैं। वे तब भी गिरेंगे जब किसी हत्याकांड की जांच करते-करते पुलिस ऑफीसर मुजरिम की कर्तव्यनिष्ठा से प्रेरणा लेकर खुद ही गुनाह करने को अप्सर हो जायें और यह कहते हुये पाये जायें कि देश तो अब डूब ही चुका है फिर हमारे कुछ करने से वह बचेगा नहीं। यानि अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। वे वह यह नहीं जानते कि ऐसे कितने ही अकेले चने देश का भविष्य फोड़ चुके हैं। एक शेडर बरबस हमारे होठों से फिसल जाता है “मैं अकेला चला था जानिवे मंजिल मगर, लोग आते गये और काफिला बनता गया”। और ऐसे कई गुमराह काफिले दिन प्रतिदिन अपने गुनाहों में दिन-दूनी रात-चौगुनी तरक्की कर रहे हैं। पर्दे का काम है आड़ देना। चाहे वह जिस भी फार्म या शेप में हो। तभी तो लोग गुनगुनाते हुये पाये जाते हैं “...पर्दे में रहने दो पर्दा न उठाओ।” और आज के पर्दे कबीर की झीनी चदरिया जैसे नहीं हैं कि आरपार दिख जाये। इतने सख्त और मजबूत हैं कि आप आजीवन लगे रहें अपने पुरे दमखम से कोशिश में ये उधड़ेगे नहीं। इसमें दोष न तो पर्दों का है न पर्दा गिराने वालों का। दोष तो बेचारे मुंह पर उंगली रख आंखों से आंमुओं के कतरे छलकाते भारतवर्ष का है जिसकी टेक्स्टाइल मिल्स ने इतनी तरक्की कर ली है कि हर इंसान की आंखों और कानों पर मोटे और मजबूत पर्दे पड़े हैं, तभी तो एक विराट फन्क्शन में एक जाने माने गुजरे वक्त के नेता को ईमानदारी और कर्तव्यनिष्ठा का ईनाम बाँटते हुये पाया। उस दिन हमारी समझ को कुछ समझ आयी कि आपसी तालमेल से उन्होंने जिन्दगी की तमाम खुशगवार दृष्टताओं और अति मोहक उद्दंडताओं को समेट लिया अवार्ड्स के अति शालीन पर्दे में। यानि जहां पर्दे हर मर्ज की दवा हों हमें डर काहे का।

पर पर्दे डालने वाले व बनाने वाले एक जगह चूक गये जहां भारतीय संस्कृति को मुंह में उंगली दबाये एक जगह ठिठका कर धकल दिया और पर्दा बदन ढकने के बजाये मात्र एक शोपीस बन कर रह गया और मनोज कुमार के गीत होठों से फिसलने लगे “थोड़े में गुजारा होता है...या हम यह भी कह सकते हैं मनुष्य दुबारा आदिम युग में लौट रहा है यानि दुनिया गोल है या “हिस्ट्री रिपीट्स इटसेल्फ” पर उस युग में जो कुछ घटता था या होता था सर्वविदित था और जो पर्दे हमेशा के लिये पड़ चुके और पड़ते रहेंगे उन पर्दों और पर्दानशीनों का क्या होगा इस लिये हम यहां कहने से बाज नहीं आ रहे हैं—

पर्दे जो उठेंगे उन्हें गिराना यारो,

पर्दानशीनों की अस्मृत को बचाना यारो।

□

कवितायें

□ अशोक कुमार

न जाने कब चुकेंगे अपनी ये हार के दिन
पेड़ों ने चुन लिए हैं सारे बहार के दिन
इंट फोड़ निकला दीवार पे नन्हा पीपल
उसकी जिजीविषा और मेरे संहार के दिन
तुझे अपनी ही तरह ढालने के चक्कर में
पीटे हुए लोहे से बीते लुहार के दिन

□

□ कुमार पुष्कर

(1)

हे राम !
एक प्रश्न का
उत्तर दोगे
वह पत्थर तुमने तैराए थे
या
स्वयं तेरे थे पत्थर

□

(2)

मेरे लिए यही समस्या है
कि मैं कहां से शुरू करूं
मैं जहां हूँ वहां
तितलियों के रंग नहीं हैं
मौसम का बदलना
पंखे के चलने और कपड़ों की ड्राईक्लीनिंग तक सीमित है
निरन्तर भागते रहने की समस्या
जैसे सारे शरीर में बारूद भरा हो
और हज़ारों-हाथ जलती
तिलियां लेकर पीछा कर रहे हैं
समस्या फिर वही है ।
कि कहां से शुरू किया जाए ।
कि मौसम अर्थ वासी मीत
और तितलियों के रंग भी रहें शेष
इस मोड़ पर
यह सच कि हरेक के होंगे पर
एक बन्दूक की नली है
ठीक वैसे जैसे अस्पताल के आंगन में
नर्स की तस्वीर होती है
और नीचे लिखा होता है 'साइलेंस'
यहां पहुंचते, पहुंचते यह तय हो गया है
बन्दूक से खामोशी तो नहीं आ पाई
परिवर्तित हो गई है पूरी पीढ़ी
मैं नहीं चाहता इस सब के लिए
करूं कोई निर्णय सुरक्षित
मुझे इस मोड़ पर बैठे बैठे
मात्र लिखना होगा
तब तक जब तक सिक्का गिर नहीं जाता ।
तय करता हुआ—चित्त या पट्ट

□

विकट है वर्तमान

□ ईश्वर चन्द्र मिश्र

दिन जो बीत गए
बड़े अच्छे थे
दिन जो आएंगे
उनसे भी अच्छे होंगे
विकट है—
बस यह वर्तमान
जो व्यतीत की व्यथा जगाता है
कभी भविष्य को भयंकर बताता है
आशाओं के सुनहरे डोरे
संभावनाओं की हरी-भरी धरती
वर्तमान के प्रति दृष्टिकोण से
जगमगाते-लहराते हैं
इसीलिए
इस वर्तमान को बचाना है
बस, इसे संवारना है ।
बस, इसे सजाना है

□

धार पर

□ डॉ० आदर्श

देखते ही देखते
चढ़ती चली गई
वह किसान औरत
आकाश छूते पेड़ की
अन्तिम लचीली टहनियों तक
खतरे पर झूलती
अभ्यस्त सधे हाथों से
काटती चली जा रही थी
उसकी कुल्हाड़ी, टहनियों पर टहनियां
कटती क्योंकर नहीं
ऐसे सधे हाथों से
भूत सी चिपकी — गरीबी

□

सूरज से घड़ियों तक

□ मनोज शर्मा

वक्त बदल गया है
कि किताबों में रखे फूल 'औ' तितलियां
यादों की हृद तक सूख चुके हैं
वक्त बदल गया है
कि लोगों ने नुक्ताचीनी के विषय बदल लिये हैं
वक्त बदल गया है
कि युग के सफेद कागज़ पर
विचारधाराएं हस्ताक्षर करने से मुकर गयी हैं
वक्त बदल गया है
कि सभा स्थल बदल गये हैं
धरातल हिल गये हैं
अब हंसू पागल खीझता
गालियों की जगह
गोलियों की आवाज़ निकलता है
मस्त साधु तक
सुरक्षित कोना तलाशता है
बदल गया है वक्त
कि बच्चों ने अपने खिलौने बदल दिए हैं

वक्त बदल गया है
कि सौ झूठ मिल कर सत्य हो जाते हैं
कथित दिग्गज
टोपियां सघा

तुक्कों की गुल्ल चढ़ा
तर्क के निशाने लगाते हैं
अंधों तक ने
केवल अपने-अपने अंग पकड़े हैं
और बटेरा-बटेरा चिल्ला रहे हैं
पोस्टर-दर-पोस्टर चिपका रहे हैं ।

यकीनन

वक्त जब बदलता है
तो देहलीजों के अंदर तक घुस आता है
गहन सन्नाटे में
चौकीदार के पास से निकलता
कुत्तों को दुत्कारता/पुचकारता
मुर्गों-मुर्गियों के हल्क तक पहुंच जाता है
इतराता
लहराता
पलकों घुमाता
गलियां/मुहल्ले
गांव/शहर
देश/विदेश
अपनी चपेट में ले आता है
और फिर
सूरज से घड़ियों का रिश्ता टूट जाता है ।

□

गजल

□ ब्रजेन्द्र त्रिपाठी

आज कुछ बदले हुए मंजर लगे
देखिये, फिर चींटियों को पर लगे
अब तो किशती आंधियों में खेल दी
कौन जाने घाट किस जाकर लगे
फिर धनक का बीज कांधे पर धरे
जिन्दगी बदरंग सी अक्सर लगे
हाले-मौसम पूछना भी है गुनाह
ऐसी बातों से मुझे अब डर लगे
तुम बताओ—हो मकाँ कैसे बुलंद
नींव में जब खोखले पत्थर लगे
सर-ब-सज्दा मैं यहां क्योंकर हुआ
मुझको तो ये आपका ही दर लगे
आ, तुझे सीने में अपने भींच लूं
मुद्दतों से तू मुझे वेधर लगे
रहजनों से भी लगे वो कम छयाल
देखने में गो कि वो रहवर लगे
दिल पे मेरे क्या गुजरती है, न पूछ
आज टेढ़े उनके कुछ तेवर लगे

□

ललद्यद के नाम

□ अग्निशेखर

एक

तुमने समय के तंदूर में मारी छलांग
और उदित हुई तन ढक कर
स्वर्ग के वस्त्रों में
बिखेरते हुए बर्फ सा प्रकाश कहा तुमने,
'कौन मरेगा और मारेंगे किसको'
तंदूर में तुम्हारे कूदने
और उसमें से निकलने के बीच की बेला में
शताब्दियों के बाद
आज फिर तप रही है तुम्हारी संतान
विकल्प की आग में छलांग है हमारा निर्वासन
और उसके फुफकारते फनों पर
लास्य-नृत्य करते हुए
तुम्हारा प्रादुर्भाव है हमारा स्वप्न

□

दो

तुम्हारे पास तो भी कच्चा धागा है
जिससे तुम खींच रही हो समुद्र में नाव
मेरे पास कुछ भी तो नहीं है

* 'ललद्यद' कश्मीर की संत कवयित्री

गर्मी तलुवों से मापते हुए अन्तहीन रेत
 सूरज को रोकने की कोशिश है
 माथे पर धरा मेरा बेखून हाथ
 तम पार तरने के लिए
 कर रही हो अपने ईश्वर से मनुहार
 मैं किसे पुकारूँ
 मेरे देवी-देवता भी मेरे साथ हैं जलावतन
 तुम्हें तो विश्वास है
 कि उस पार है तुम्हारा घर
 जिसके लिए तुम हो मेरी ही तरह बेचैन
 पर मेरे घर का शेष है
 अस्थि-विसर्जन



तीन

हम पर भी कसी गयीं फब्तियाँ
 समय की टेढ़ी आंख ने भी
 चुना हमें ही
 अपनी ही सड़कों पर
 हमारे पीछे भी लगा वही आदमी
 जिससे बचने के लिए
 तुमने मारी थी छलांग तंदूर में
 और तुम तो निकली थीं
 स्वर्ग के वस्त्र पहन कर
 हम तो झुलस रही हैं तुम्हारी बेटियाँ
 इस अलाव में



राधा रमण कृष्ण

□ पीताम्बर शास्त्री

देख हर फूल के रंग की तितलियां,
बैठ हर फूल पर, पर हिलाने लगीं ।
सिर धरी गगरियां, कृष्ण की गोपियां,
घाट की बाट पर गीत गाने लगीं ।
थीं सभी तारिका, थीं नहीं राधिका,
कृष्ण घबरा गए, कृष्ण अकुला गए ।
तिलमिलाने लगे, गिड़गिड़ाने लगे,
कृष्ण की मूर्ति से, कृष्ण कहने लगे—
कृष्ण प्रतिमे बता, है कहां राधिका ।
कृष्ण से कृष्ण की मूर्ति कहने उठीं—
कृष्ण पथरा गई हूं, वही राधिका ।
कृष्ण की गोपिका, कृष्ण की दीपिका,
कृष्ण परिचारिका, कृष्ण आराधिका ।
हूं वही राधिका, हूं वही राधिका,
कीर गाने लगे, सारिका गा उठीं ।
कोक गाने लगे, बुलबुलें गा रहीं,
हूं वही राधिका, हूं वही राधिका ।
गोप गाने लगे, बुलबुलें गा रहीं,
धेनुओं के कई वृन्द आने लगे ।
अवनी गाने लगीं, यों गगन गा उठा,
हूं वही राधिका, हूं वही राधिका ।
कृष्ण हंसने लगे, मुस्कराने लगे,
वेणु अधरन पर धर बजाने लगे ।
रंग ऐसा जमा, रास ऐसी रही—
कृष्ण की गोपियां कृष्णमय हो गईं ।

विदेशी साहित्य

काइरेनिया

□ अनु० सुधीर सक्सेना

उत्तरी साइप्रस में काइरेनिया टापू की सर्वाधिक खूबसूरत और आकर्षक जगह थी — लेकिन, तुर्कियों के आक्रमण के बाद मृत्यु और विनाश ने इसे बेतरह रौंदा। काइरेनिया का यह त्रासद यथार्थ साइप्रस के कवियों को गहरे विचलित करता रहा है।

कोस्टास मोंटिस

तुर्की का आक्रमण—1974 की जुलाई

भरोसा करना दूभर है
कि काइरेनिया का समुद्र उन्हें लाया
भरोसा करना दूभर है
कि समुद्र, जिसे हम इतना प्यार करते हैं,
उन्हें लाया
देखो,
तस्वीरों में देखो
हम किस कदर खिलखिला रहे हैं
तुम्हें पता है—
ये तस्वीरें बहुत बरस पहले नहीं खींची गईं
तुम्हें याद है
हम किस कदर हंसी के अभ्यस्त थे ?
काइरेनिया के तीखे समुद्र !
तुम्हारे लिये लिखी सारी कवितायें
अब हमें वापस लेनी होंगी ।

कारावास, लैपिथोस—1974 का अगस्त

इस साल

उनके नीबुओं का निर्यात मत करो

उनका रस

अठारह-अठारह साल के लड़कों का खेल है

उनका रस

अठारह-अठारह साल के लड़कों की वासन्तिक फसल है

सोचो, उन्हें सदैव के लिये कहां सहेजा जा सकता है।

सोचो, उन्हें सदैव के लिये कैसे सहेजा जा सकता है।

नीबुओं की वाटिका और लैपिथोस

कौन था वह

जिसने तुम्हारे मार्ग में इतना भयावह बरस अंकित किया

हमारी जिंदगी के तमाम बरसों की बुनावट के बीच

जब पंखहीन-युवकों का मांस तुम्हारी जड़ों के लिये खाद बना

और, रस, जो नीबुओं को गदराता है,

उनका रक्त।

किप्रोस क्राइसैंथिस साइप्रस 1973 (साइप्रस की मिठास भरी धरती की कविता)

एक

उफ़नता हुआ प्यार

साइप्रस का जन्म हुआ है।

दो

साइप्रस ताजगी की बूंद है

हरेक पांव तले।

खुले समुद्र से उठी हवा बहती है

अपने की स्मृतियों में गूँथती हुई।

यौवन से भरेपूरे उसके अंतरीप नग्न हैं

वे बोलते हैं भोर के लहजे में।

उसकी खाड़ियां

हरे केश के सुवासित तेल में
अपकियां लेती हैं
मानचित्र में
साइप्रस जन्म लेता है

तीन

सलामी का समुद्र
दुपहरी में खुशी का चौरस मैदान है
में हौले से चुन लेता हूं अगस्त
और हम हंसते हैं

चार

जब मैं फाशागुस्ता के समुद्र को देता हूं अपनी देह
हवा की गड़रियों वाली तुरही
रेत के साथ मेरी देह के छिद्रों में धंस जाती है
वे गूंधते हैं रविवार की घनी लाल चपाती
तुम दावते हो मेरी देह
और सूर्य उगलता है गरमी की चमकीली लपटें ।

पांच

सलामी पर
रोशनी कोई परछाई नहीं छोड़ती
वह नई रोशनी गड़ती है
रोशनी से छिन्नमस्ता मूर्तियां खड़ी रहती हैं
लहरें परखी हुई रोशनी से

छह

तुम्हारे होंठों के तितलियाई—पंखों पर
आह्लादित चुम्बन
स्वामी समुद्र, तुम्हारे अद्भुत उर्वर नितम्ब ।
फ़रेव से अजनबी तुम्हारी नंगी जांघें,
और, तुम्हारे हाथ की सीपी में बहती हुई
शरद की ओस
प्यार की मीठी मेहनत के संगीत पर थिरकती हुई ।
सूर्य, उनींदा लापरवाह, पसरा हुआ

पत्तियों और रेत की दरारों के बीच
बतियाता है तुम्हारी सिकी पीठ से
ओ मेरी नन्ही भौंह, किरैनिया ।

सात

साइप्रस, दक्षिण से निचोड़ी हुई, अंतिम वृंद ।

निकी लदाकी फिलिपोऊ काइरेनिया

काइरेनिया
तुम्हारे यास्मिन की
कलियां हमारे दिलों में चटख रही हैं
और, तुम्हारा किनारा
हमारे वच्चों के पांव दुलराता है
तुम्हारे कंकड़ पत्थर
वेदना की घड़ियों में
हमारे ताबीज और हमारे ढांडस हैं
और तुम्हारा सौंदर्य
और तुम्हारा प्यार
और तुम्हारी उत्तेजना
पांच उंगलियों वाले व्यक्ति की
हथेली की गिरफ्त में ।
काइरेनिया
एक मसला हुआ फूल
साइप्रस की लड़कियों की
कढ़ी हुई चुन्तदार ओढ़नी में टंका
जिसके लिये
कहती हैं लड़कियां—
“तुम्हारे रंग
हमारे लिये बेमानी हैं ।
नाभि,
और मस्तिष्क
और, आत्मा...तुम
काइरेनिया ।
हमारी शिराओं के रक्त
हम तुम्हें दोबारा हासिल करेंगे
हमारा सीधा हाथ हमारे दिल पर है
ठीक उस जगह,
जहां घाव रिस रहा है

□

कहानियां

असली नाम के पापा

□ महाराज कृष्ण सन्तोषी

इस समय घर में उन दोनों के सिवा कोई नहीं था। विनीत बाहर गया हुआ था और सुहेल कालेज। उमेश ने एकांत पाकर अपनी पत्नी को कमरे में बुलाया। पत्नी के कमरे में आते ही उसने उससे पूछा—

“क्या विनीत ने अपने फैसले पर दुबारा विचार किया?”

“नहीं, वह अपने फैसले पर कायम है। कह रहा था कि उसे दूसरा विवाह कर ही लेना चाहिए” पत्नी ने सहज होकर उत्तर दिया।

“नहीं, नहीं, इस उम्र में दूसरा विवाह! पगला गया है विनीत। पत्नी की मृत्यु के तुरन्त बाद कर लेता तो ठीक था लेकिन अब इतने वर्षों बाद दूसरे विवाह की बात सोचना ठीक नहीं रहेगा।”

“मगर मैं ऐसा नहीं मानती। वह अभी जवान है स्वस्थ भी है, कमाता भी खूब है— फिर दूसरा विवाह करना कोई पाप तो नहीं” पत्नी ने विरोध किया।

“लेकिन वह अगर दूसरा विवाह करेगा तो हमारे बेटे का क्या होगा?”

“क्या मतलब!” सुनयना ने आश्चर्य प्रकट किया। अपनी आंखों में सांसारिकता की चमक लाते हुए उमेश कहने लगा—

“देखो सुनयना!” विवाह करने पर विनीत अपना घर बसायेगा। बसायेगा ना?

“हां बसायेगा तो सही।” सुनयना ने उत्तर दिया।

“उसकी अपनी सन्तान होगी।”

“हां होगी।”

“तब क्या हम उससे अपने बेटे के लिए रुपये मांग सकते हैं ? और तुम जानती हो उसकी कितनी मोटी बैंक बैलेंस है।”

“तब क्या होगा ?” पत्नी के स्वर में उदासी थी।

“तुम उसे इस फैसले से हतोत्साहित कर सकती हो। तुम उसे अपनी मीठी बातों से.....”

“क्या.....!” पत्नी के भीतर से जैसे कोई चीख निकली।

“हां मैं ठीक कह रहा हूं, मैं। तुम ही हो जो उसे विवाह करने से रोक सकती है।”

“वह कैसे ? “अनचाहे ही उस के मुंह से निकला।

“उसे इस समय प्यार की वेहद जरूरत है। तुम उसकी प्रत्येक सुख-सुविधा का विशेष ध्यान रखा करो — यहां तक कि हंसी दिल्लगी की बातें भी किया करो।”

“मगर फिर भी मैं उसकी भाभी हूँ। भीतर की तन्हाई दूर कैसे कर सकती हूँ ?”

“नहीं सुनयना ! तुम उसके पास अधिक से अधिक समय बिताया करो। उसे अपने प्यार की छांह में रखो और उसे बताओ कि इस उम्र में दूसरी शादी स्त्री की गुलामी के सिवा कुछ भी नहीं है।”

“मगर मैं यह उसे कैसे कहूंगी ?” पत्नी ने अपनी असमर्थता प्रकट की।

“बेवकूफ मत बनो। मेरी आमदनी से तो घर का खर्चा भी पूरा नहीं होता फिर सुहेल की पढ़ाई का क्या होगा ?” तुम्हें अपने बेटे के लिए कुछ बलिदान तो देना ही पड़ेगा।” उमेश उठ खड़ा हुआ। बंद खिड़की खोली और बाहर देखने लगा।

रात उमेश जल्दी सो गया। लेकिन सुनयना थी कि अपने भीतर अपने पति की कही बातों की अनुगूँज रह-रह के महसूस कर रही थी। उसने कभी ऐसा सोचा भी नहीं था कि उसका पति इस हद तक सांसारिक धूर्तता से भरपूर है। देखने में वह कैसा भोला भाला सा व्यक्ति लगता है। उफ ! कैसे बहुरूपिये होते हैं ये मर्द ! औरत को प्रेमिका भी बनाएंगे और वेश्या भी। मगर उमेश अपने लिए थोड़े ही यह सब करने को कह रहा था। अपने बेटे के लिए तो वह अपने पुरुषोचित अहंकार को भी तिलांजलि दे रहा था। शायद उसने एक बहुत बड़े अफसर के बाप होने का सपना देखा है।

“जानते हो विनीत क्या कह रहा था ?” अपने पति की बांहों में सिमटी हुई सुनयना कह रही थी ।

“क्या कह रहा था ?” बांहों को ढीला करते हुए उमेश ने पूछा ।

“कह रहा था कि भाई साहब बड़े भाग्यशाली हैं ।”

“वह कैसे ?” उसने अपने होंठ काटते हुए पूछा ।

“मैं इतनी खूबसूरत जो हूँ” उमेश को गर्व अनुभव होने लगा । उसने अपनी पत्नी को आलिंगन में कस लिया और चुम्बनों से नहलाने लगा ।

“और क्या कह रहा था विनीत ?” कुछ देर के उन्माद के बाद उसने पत्नी से पूछा ।

“कहता था—देवर भाभी के रिश्ते में यह सब.....।”

“तो क्या उसने तुम्हें छेड़ा ?” स्वर में तनिक रोष था ।

“नहीं केवल चालाकी से मुझे छू गया ।”

“और.....?”

“वह मुझे खजुराहों का अलवम दिखाने लगा । दिखाते-दिखाते कहने लगा कि यह भारतीय कला की पराकाष्ठा है ।”

“तुम ने क्या कहा ?”

“मैंने भी कहा कि कला की ही नहीं, दर्शन का भी चरमोत्कर्ष है ।”

“उसने क्या कहा ?”

“वह मेरे निकट आकर मेरे कानों में कहने लगा कि इस बोल पर तुम्हें चूमने को जी करता है ।”

“तो क्या तुमने उसे चूमने दिया ?”

“नहीं !

तो क्या मैं ?.....

“शुक्र है भगवान का” उमेश के मुंह से अनायास निकला ।



विनीत ने अपने दूसरे विवाह की जिद छोड़ दी थी । अपने भाई के सामने वह अपनी अनिच्छा प्रकट कर चुका था । अब वह पहले जैसे उदास और बुझा-बुझा सा दिखाई नहीं देता था । उसकी आंखों में एक तृप्ति थी । उमेश और उसकी पत्नी दोनों खुश थे कि चलो बेटे का भविष्य सुरक्षित है ।

बीत रहे दिनों के साथ सब कुछ सहज हो चला था ।



इधर कुछ समय से उमेश महसूस करने लगा था कि अब सुनयना उस की तरफ से काफी लापरवाह-सी हो गई है। इसी बात को लेकर अब वह काफी तनावग्रस्त रहने लगा था। हालांकि उसने इस तनाव से निकलने की बहुत कोशिश की लेकिन मन था कि सब तर्क ठुकरा रहा था। इसी मानसिक द्वंद्व में उसने एक रात अपनी पत्नी से अपने मन की बात कह दी।

“क्या मैं मनाह करती हूँ। तुम ही मेरी तरफ ध्यान नहीं देते।” पत्नी ने वापस कहा। यह सुनकर वह और बुझ गया। उसके भीतर का घना कोहरा और गहराने लगा था।

रविवार का दिन था। उमेश संडे बाजार गया हुआ था। विनीत भी घर में नहीं था। सुहेल स्कूटर लेकर अपने मित्र के यहां गया हुआ था। सुनयना अपने कमरे में अकेले बैठी कुछ पढ़ रही थी। शायद पढ़ने का ढोंग कर रही थी। दरअसल सुहेल की बातों की चुभन अभी भी उसके भीतर जीवित थी। अक्षरों के बीच आंखें गड़ाये वह कुछ सोचती जा रही थी। सोचते-सोचते कभी वह अपने बेटे से हुए सम्वादों को मन ही मन दोहराने लगती.....।

“मम्मी ! अंकल दूसरी शादी क्यों नहीं करते ?” सुहेल ने पूछ लिया था।

“यह क्या उम्र है उसकी दूसरी शादी की” सुनयना ने सहज होकर उत्तर दिया था।

“क्या कहती हो मां। आजकल बूढ़े तक दूसरी शादी करते हैं, अंकल तो अभी पचास भी नहीं हुए।” बेटे ने प्रतिवाद किया था।

“तुम नहीं समझोगे” मां ने कहा था।

“हां, हां, मैं नहीं समझूंगा—मैं अभी बच्चा हूँ ना.....” स्वर में तीखापन था।

“ऐसी बात नहीं है, बेटा। दरअसल हम अंकल को खुश देखना चाहते हैं। इस उम्र में उसे किसी गलत औरत के साथ बांध देना क्या उचित होगा। इस उम्र में भले घर की स्त्रियां क्या रंडवा मर्दों को व्याहती हैं।”

“मैं कुछ नहीं जानता ! मगर एक बात पूछूँ मम्मी ?”

“हां पूछो।”

“तुम पापा से कभी इस तरह हंस के बात नहीं करती लेकिन अंकल के साथ ये ठहाके.....।” यह सुनकर सुनयना स्तब्ध रह गई थी। उसे लगा था कि सुहेल अब काफी बड़ा हो गया है—शायद अपनी उम्र से भी ज्यादा।

सुहेल घर में काफी उदास रहने लगा था। पढ़ाई में भी उसका ध्यान घटने लगा था। टी० बी० देखने की रुचि ही मर गई थी। वह निरन्तर यही सोचता रहता कि आखिर इस

दुविधा से कैसे मुक्त हो सके। पिता से कुछ कहने की हिम्मत भी नहीं हो रही थी। मम्मी पर क्रोध भी आ रहा था और दया भी। कई दिनों के आत्म मंथन के बाद उसने फैसला किया कि पिता के सामने बात को सांकेतिक रूप में रखा जाए। उस दिन जब मम्मी पड़ोस वालों के सत्संग में गई हुई थी तो सुहेल को वांछित अवसर मिल गया। अंकल भी दूर पर देहरादून गए हुए थे।

“पापा.....!” उस ने शर्मति हुए कहना शुरू किया।

“क्या है बेटा।” पिता के स्वर में मीठी नरमाहट थी।

“पापा ! अंकल को कहो न कि वह कहीं दूसरी जगह अपना घर बसाएं।”

“नहीं, बेटा ! ऐसा नहीं कहते। वह तुम्हारा चाचा है—मेरा छोटा भाई है” पिता के स्वर में हल्की सी घुड़कन थी।

“मगर घर बसाने के लिए रिश्तों में रुकावट कैसे” सुहेल के कथन में गाम्भीर्य था।

“तुम नहीं समझोगे” पिता ने बात को यहीं खत्म करना चाहा। और उठकर कमरे से बाहर चले गए।



सुहेल का तनाव बढ़ रहा था। इसी तनाव में उसने एक दिन नाटकीय अंदाज में मां से पूछा।

“मम्मी तुम ने हैमलेट पढ़ी है?”

“हां पढ़ी है” मां ने गर्व के साथ कहा।

“क्या तुम्हें उस के सभी चरित्र याद हैं?”

“शायद याद हैं।”

“हैमलेट की मां का भी।”

“हां..?”

“तुम भी अपने जीवन में उसी का रोल करने लगे हो?”

“क्या.....?” मां के स्वर में घोर आश्चर्य था।

“हां ! तुम भी मेरे अंकल के साथ मेरे पिता के खिलाफ षड्यन्त्र कर रही हो।”

“आगे एक शब्द भी नहीं बोलना” सुनयना ने गुस्से में कहा। सुहेल जैसे अपनी जगह फीज हो गया। वह सुबकने लगी। सुबकते-सुबकते ही कहने लगी थी।

“तुम्हें क्या मालूम कि अभाव क्या होता है। तुम ने जो मांगा, हम ने दे दिया लेकिन तुम नहीं जानते कि ये सारी सुख सुविधाएं पिता के रूपयों से नहीं, तुम्हारे चाचा के रूपयों

से सम्भव हुई हैं तुम्हारी मोटर बाइसिकल, ये कलर टी० वी०, कम्प्यूटर सब वही लाए हैं।”

“क्या ? ... “सुहेल के स्वर में कंपन था ।

“हां बेटा ! तुम्हारे पिता का वेतन ही कितना कुछ है । अगर तुम्हारा चाचा नहीं होता तो हम कब के तवाह हो गए होते । और हां, अब यह भी सुन लो कि हम ने ही विनीत को दूसरी शादी के लिए हतोत्साहित किया ताकि वह कहीं और न चला जाए । जानते हो हम ने यह सब क्यों किया ?”

“क्यों किया ?’ सुहेल की आवाज में घृणा थी ।

“तुम्हारे भविष्य के लिए !”

“मेरे भविष्य के लिए ?”

“हां-हां तुम्हारे भविष्य के लिए.... हम तुम्हें किसी अच्छी ट्रेनिंग पर भेजना चाहते हैं और वह तब तक ही सम्भव है जब तक कि तुम्हारा चाचा हमारे साथ है । इसी लिए मैंने उसे अपने प्यार के साए में रखा..... ।”

‘क्या पापा यह सब जानते हैं’ सुहेल ने बेचैनी पूछा ।

“हां सब कुछ जानते हैं” सुनयना ने उत्तर दिया ।

“ओ मम्मी !.....”

वह रोने लगी और काफी देर रोती ही रही । सुहेल सामने गुमसुम बैठा रहा । आखिर उस से रहा नहीं गया । वह मां के करीब आया । उसके आंसू पोंछे और कहा—

“मम्मी मेरी एक बात का जवाब दोगी ?”

“बोली” कि, आखिर मेरे पापा का ‘असली नाम’ क्या है ? ममता भरे स्वर से कहा ।

और सुनयना भारी आखों से निःशब्द घड़ी के हिलते पेंडुलम की ओर देखने लगी । □



Regd. No. 28871/76

SHEERAZA HINDI

April-May 1996

Vol. : 31

No. : 1



Published by the Secretary on behalf of J & K Academy of Art, Culture & Languages, JAMMU & Printed at ROHINI PRINTERS, Kot Kishan Chand, JALANDHAR CITY (Pb.)